“बीती हुई यादें"

ॐ

ब्रह्म सत्यम् सर्वाधार

"समता अपार शक्ति"

“बीती हुई यादें"

(कथानक 1-40)

-: ओमकपूर :-

प्रसारकः
समता सत्संग स्थान
21-ओल्ड सर्वे रोड, दिलाराम बाज़ार
देहरादून - 248001, भारत
दूरभाष- 0135-2764837

महामन्त्र

ओइम् ब्रह्म सत्यं निरंकार अजन्मा
अद्वैत पुरखा सर्व व्यापक
कल्याण-मूरत परमेश्वराय
नमस्तं

शब्दार्थ

ॐ ब्रह्म परम निर्गुण सत्ता है केवल मात्र
सत्य है; वह सत्ता आकार रहित है और उसका जन्म नहीं होता; वह
केवल मात्र सत्ता सर्व-व्यापक है एवं कल्याण-स्वरूप है; ऐसे
सर्वातीत सर्व-व्यापक परमेश्वर को नमस्कार है।

निवेदन :-

सन्मार्ग के प्रबुद्ध पथिक के चरणों में यह “संस्मरण" सस्नेह सादर अर्पित है।

श्री सदगुरूदेव सर्वज्ञ प्रभु, सद्ज्ञान वर्धन में हम सबका मार्ग-दर्शन करते हुए सहाई होवें।

पथिक अवलोकन करे, सोचे और कुछ प्रेरणा ले सके तो यह सत्कार्य सफलीभूत होगा।

हमारे ऊपर उसकी कृपालुता होगी।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥ 1 ॥

सब सुखी हों, सब आरोग्यवान हों, सबका
कल्याण हो, कोई दुःखी न हो॥ 1 ॥

दुर्जनः सज्जनो भूयात्, सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान विमोचयेत्॥ 2 ॥

दुर्जन सज्जन हो जावें, सज्जन शान्ति प्राप्त करें,
शान्त बन्धन से मुक्त हों और मुक्त दूसरों को मुक्त करें॥ 2 ॥

ॐ तत् सत्

श्री सद्गुरूदेव मंगतराम जी महाराज

सत्पुरुष श्री मंगत राम जी महाराज

जन्म: नवम्बर 24, सन् 1903

महासमाधि : फरवरी 4, सन् 1954 (अमृतसर) पंजाब

जन्म स्थान : गंगोठियां ब्राह्मणां, तहसील कहुटा

ज़िला रावलपिण्डी (पाकिस्तान)

श्री सद्गुरूदेव महात्मा मंगतराम जी महाराज
-संक्षिप्त जीवन परिचय-

पूज्यपाद श्री सतगुरू महात्मा मंगतरात जी वर्तमान युग के जन्मसिद्ध सत्पुरुष हुए है। आपका जन्म मंगलवार दिनांक 9 मग्धर 1960 तदनुसार 24 नवम्बर 1903 को शुभ स्थान गंगोठियाँ ब्राह्मणां, जिला रावलपिण्डी (पाकिस्तान) के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में हुआ। आप बाल ब्रह्मचारी, पूर्ण योगी, परम त्यागी एवं ब्रह्मनिष्ठ आत्मदर्शी महापुरुष थे।

आप में 'स्थितप्रज्ञ' के समस्त लक्षण पूर्णरूपेण विद्यमान थे। 13 वर्ष की अल्पायु में आत्म साक्षात्कार कर लेने के पश्चात आप सांसारिक प्राणियों का उद्धार करते रहे। देश और काल के अनुसार जहाँ कहीं भी आपने धर्म की मर्यादा को भंग होते देखा तथा सामाजिक नियमों के पालन में त्रुटि पाई, वहाँ पर ही धर्म की मर्यादा की स्थापना की और सदाचारी जीवन बिताने का उपदेश देकर सामाजिक ढाँचे को विश्रृंखल होने से बचाने का प्रयत्न करते रहे।

आप अपनी मधुर वाणी और निर्मल विचारों के द्वारा हर एक को प्रभावित कर लेते थे और सरल एवं सुबोध भाषा में आध्यात्मिकता के गम्भीर विषयों को सहज ही सुलझा दिया करते थे। आपने समता के उद्देश्य का जगह-जगह पर प्रचार किया और यह सिद्ध कर दिया कि समता सिद्धान्त को अपनाकर ही मानव संकुचित विचारधारा, साम्प्रदायिकता तथा जाति-पाति के बंधनों से ऊपर उठ सकता है।

आपने सांसारिक प्रणियों को सत्शान्ति की प्राप्ति के निमित्त समता के पाँच मुख्य साधनों- **(1) सादगी (2) सत्य (3) सेवा (4) सत्संग और (5) सत् सिमरण** को अपने निजी जीवन में ढालने का उपदेश दिया।। सत् पर आधारित होने के नाते आपके सभी उपदेश विश्व कल्याण की

भावना को अपने में संजोये हुए है। आपने भारत के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का दौरा करके जहाँ रूढिवादिता एवं अन्धविश्वास का खण्डन किया वहाँ सत् के जिज्ञासुओं को समता का पावन संदेश देकर उन्हें परमार्थ पथ पर आरूढ़ किया। आपकी वाणी का संग्रह ग्रन्थ **"श्री समता प्रकाश"** और वचनों का संग्रह ग्रन्थ **"श्री समता विलास"** प्रकाशित हो चुके है।

आप 4 फरवरी, 1954 को गुरू नगरी अमृतसर में अपने नश्वर शरीर का त्याग करके परमसत्ता में विलीन हो गये।

"प्राक्कथन"

लगभग 6 दशक पूर्व एक सत्य के जिज्ञासु नवयुवक जिनका पालनपोषण सुसंस्कृत एवं धार्मिक परिवार में हुआ। जहाँ साधु सन्तों, विद्वानों और महात्माओं का सानिध्य प्रचुरता से उपलब्ध रहता था। परिवार जनों के भक्त प्रकृति के प्रभाव के फलस्वरूप संस्कार रूप में प्रतिदिन सत्संग, भगवत्कथा सत्चर्चा विद्वानों एवं सन्तजनों से प्रवचन सुनने को मिलते थे। परन्तु जिज्ञासु युवक को उन की बातों ने प्रभावित नहीं किया। साधु समुदाय की सुनी-सुनाई और पढ़ी-पढ़ाई बातों का कथनी ज्ञान उन्हें रास नही आया। उनके विचार मौलिक प्रतीत नहीं हुए। उनकी कहनी और रहनी में जमीन आसमान का अन्तर पाया। वह तो सच्चा सौदा खरीदते समय, खरे खोटे का ध्यान करना चाहते थे। उन्होंने ऐसा अनुभव किया:-

कहन कथन में चतुर बहु देखे, अन्तर सार नहीं जानी।
'मंगत' कथनी मद डूबे, बड़े चतुर बुद्ध ज्ञानी ॥

उन्हें ऐसे सत्पुरूष की खोज थी, जिन्होंने तप, त्याग तथा यत्न से जीवन की मौलिक समस्याओं पर गहरी खोज की हो। जो अपने जीवन की अनुभूतियों के आधार पर आत्म तत्त्व का बोध कर चुका हो, जो आत्म लीन हो, "जहाँ चाह वहाँ राह" और "जो खोजता है, उसे वह मिल ही जाता है" अन्ततः एक मित्र की प्रेरणा से गुरू देव महात्मा मंगत राम जी के निकट पहुँच गये। परन्तु फिर भी सन्तुष्टि नहीं हुई "बिना लाग-लपेट कह दिया कि इन की बोली हमारी समझ में नहीं आती। इनकी बातें हमारे कुछ पल्ले नहीं पड़ती" सम्भवतः गुरूदेव भी शिष्य की तड़प को परखना चाहते थे।

1951 में एक मित्र के अनुरोध पर पुनः दर्शन प्राप्त हुए। तब अन्तर्यामी गुरूदेव ने स्मरण कराया "भाई तुम्हें तो हमारी बात ही समझ में नहीं आती"।

जिज्ञासु युवक ने बिना हिचकिचाहट फिर कह दिया "हाँ 1948 ऐसा ही हुआ था"।
गुरूदेव ने प्रेम से कहा-
"प्रेमी सत्संग में आया करो, सब समझ में आ जाएगा"। मानो प्रेम का बाण दिल को छू गया। बस व्यक्तिगत सम्बंधों से प्रारम्भ हुआ सच्चे गुरू और सत् के जिज्ञासु शिष्य का अटूट सम्बंध, चलती रही खट्टी-मीठी बातें, जो लेखक जिज्ञासु आदरणीय श्री ओम कपूर जी देहरादून ने अपनी लेखनी से "बीती हुई यादों के अन्तर्गत लेखनी बद्ध किया है।
वही नवयुवक जिज्ञासु अब जीवन के अन्तिम पड़ाव पर सद्गुरू को अपने अंग-संग अनुभव कर पूर्ण निष्ठा, प्रेम और उमंग से श्री गुरू देव के पूर्ण समर्पित संगत कार्यों में जुटे रहते है। मानो श्री सत्गुरू देव के मिशन को, उनकी शिक्षाओं को अपने अन्तिम सांस तक आगे बढ़ाना ही उनके जीवन का लक्ष्य रह गया है।

रामप्रसाद
भूतपूर्व सम्पादक समता सन्देश पत्रिका

कथानक-1
"बीती हुई यादें"

सन् 1948 की गर्मी के मौसम की घटना है। श्री महाराज मंगत राम जी से मेरी पहली मुलाकात इस प्रकार हुई:-

हमारे रेस्ट कैम्प के पुराने मकान में एक एनेक्सी थी। उस एनेक्सी में हम संत महात्माओं को अक्सर ठहराया करते थे। हमारे दादा जी बड़े भक्त प्रकृति के इंसान थे। रोज शाम को हमारे यहाँ भगवत कथा एवं सत्चर्चा हुआ करती थी। उसमें साधु, विद्वान, महात्मा भक्त आदि कई प्रकार के लोग आया करते थे। उनके साथ सम्पर्क स्थापित करने का मुझे सर्वदा मौका मिलता रहता और मैं भी उनके सत्संग व सत्वार्ता सुना करता था। पंड़ितों साधुओं और महात्माओं से बात-चीत व विचार-विमर्श भी होता रहता था।

इससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा था कि ये सब सिर्फ ऊपरी बातें करते हैं और अन्तरज्ञान का इन्हें कुछ पता नहीं हैं। ये केवल ग्रन्थ व किताबों से पढ़-पढ़ा कर बातें करते है। ये लोग एक किताब से दूसरी किताब, दूसरी किताब से तीसरी किताब के हवाले (उदाहरण) देते थे और उन हवालों से अपने मत का प्रतिपादन करते थे। उनकी आन्तरिक वा अध्यात्म ज्ञान की जो उपलब्धि थी वह मेरी समझ में नगण्य थी। मैं यह समझता था कि ये सब बेचारे मेरी तरह से ही सच्चाई की तलाश में भटक रहे हैं एवं इनका कुछ भी अपना अनुभव व निश्चित मत नहीं है।

राय साहब दिवान रल्लाराम हमारे दादाजी के घनिष्ठ मित्रों में से थे। ये श्री महाराज जी के शिष्य थे। 'उन्हें' देहरादून ये ही लाये थे।

श्री सदुरूदेव जी बाहर से देखने में कोई महात्मा फकीर नहीं लगते थे बल्कि महज (केवल) एक साधारण देहाती आदमी नजर आते थे। सिर पर

पगड़ी, गले में केवल एक बटन का कुर्ता और नीचे एक तहमद की तरह से बँधी हुई धोती, बस ये ही उनके कपड़े थे, इन्हीं कपड़ों में वे हमेशा रहते थे और इसके अलावा उनके पास कोई सामान नहीं था।

भोजन में एक वक्त चाय, दूध में डालकर या पानी में डालकर डेढ़ पाव के लगभग ले लेते थे। पानी भी नहीं पीते थे, सोते भी नहीं थे, नींद कहाँ से आयेगी, अनाज तो पेट में जाता ही नहीं था। बस केवल यही सब कुछ था। पता लगा कि राय साहब दिवान रल्लाराम जी के गुरू आये हैं, तो मेरे दादाजी ने कहा-

ओम, तुम जाकर जरा मुलाकात तो करो, कैसे महात्मा हैं? सुना है, बड़ी करनी वाले महात्मा है। राय साहब तो बड़ी तारीफ करते हैं।

मैंने कहा- "ऐसे महात्मा तो आते जाते रहते ही हैं।" उन्होंने कहा-"नहीं, तुम जरूर जाओ।"

मैंने कहा- "अच्छी बात है।"।

हमारी एनेक्सी में उस वक्त एक ब्रह्मचारी श्री प्रकाशानन्द सरस्वती ठहरे हुए थे (वे ब्रह्मचारी अब महामण्डलेश्वर बन गए हैं और कनखल के किसी आश्रम में अधिष्ठाता हैं) उनको साथ लेकर मैं श्री महाराज जी के पास पहुँचा। राय साहब दिवान रल्लाराम के मकान में एक बड़ा सा कमरा था। उस कमरे में एक किनारे पर 'वे' बैठे हुए थे। कमरे में चारों तरफ उनके पास आये हुए और लोग बैठे हुए थे।

मैंने और ब्रह्मचारी जी ने भी एक किनारे में जाकर अपने बैठने की जगह बनाई और 'उनकी' बात सुनने लगे। बात सुनते ही हमें पता लगा कि जैसे कोई शेर दहाड़ रहा है। एक मामूली दुबला-पतला शरीर जिसमें बात तक करने की ताकत भी नहीं दिखाई पड़ती थी और यह प्रतीत होता था जैसे कोई बीमार है, पर उसके अन्दर से आवाज ऐसी निकल रही थी जैसे कोई

शेर गरज रहा हो।

हालांकि इस आवाज से हमें कुछ पता नहीं चला कि वे क्या बोल रहे है क्योंकि वह भाषा पश्चिमी पंजाब (अब पाकिस्तान) के 'पुठवार' इलाके की थी। 'पुठवार', रावलपिण्डी के पास, एक इलाका है, जिसके गाँव की यह भाषा थी। हमारी समझ में यह भाषा बिल्कुल भी नहीं आई।

हम मुश्किल से पंद्रह मिनट बैठे होंगे और फिर हम उठकर बाहर आ गये। मेरे साथ ब्रह्मचारी जी भी थे। जब हम बाहर आ गए तो राय साहब दिवान रल्लाराम भी हमारे पीछे उठकर आये और कहने लगे- "ओम जी, अपने सुना हमारे गुरुदेव को?"

मैंने कहा- " हमारी समझ में तो जहाँ तक जानने की बात है कुछ पल्ले नहीं पड़ा।"

मेरी एक प्रार्थना है- अब तो मेरी मुलाकात नहीं होगी क्योंकि मैं यहां आकर क्या करूँगा।

आप 'उनसे' यह कहिएगा- "कि शरीर द्वारा ही आप लोगों का कल्याण कर सकते हैं तो इस शरीर को संभालने का प्रबंध करें वरना यह शरीर ढह जाएगा। जैसा कि आपसे पता चला हैकि 'वे' भोजन में एक वक्त चाय, दूध में डालकर या पानी में डालकर डेढ़ पाव के लगभग ले लेते हैं और पानी तक भी नहीं पीते हैं।"

इस पर राय साहब कहने लगे-- "मैंने तो बहुत कोशिश की लेकिन 'वह' इससे ज्यादा स्वीकार ही नहीं करते।"

मैने कहा---' -"फिर कोशिश करो शायद मान जायें।" बस इतनी सी बात कहकर हम वहाँ से चले आये और फिर हम वहाँ नहीं गये।

कुछ काल बाद सन् 1951 में मैंने अपने मित्र डॉक्टर मदन मोहन और राम प्रकाश गुप्ता से बातों (श्री महाराज जी के बारे में बातचीत) के दौरान

कहा था कि 'उनकी' बोली हमारी समझ में नहीं आती, पर महात्मा बहुत उच्च कोटि के नजर आते हैं। 'उनके' अन्दर कोई बनावट नहीं है, किसी प्रकार की कोई भी दिखावट नहीं है। जो बात करते हैं बड़ी स्पष्ट करते हैं और अपनी बात का प्रमाण किसी शास्त्र से या किसी किताब से नहीं देते बल्कि अपने स्वयं के अनुभव को ही मौलिकता से पेश करते हैं। किसी प्रकार की विद्वता का मामला नहीं है बल्कि जो बात भी है वह Original (मौलिक) है।

मेरे से इतना सुनकर दोनों डॉक्टर बन्धु महाराज जी के पास गये और उन्होंने महाराज जी को देखा और सुना एवं मुझे बताया कि "ओम जी, जो कुछ तू उस फकीर के बारे में कहता था वह बात बिल्कुल ठीक नहीं है। तू कैसे कहता है कि उनकी बात समझ में नहीं आती। उनकी बोली बिल्कुल साफ है, सब समझ में आती है।"

11 दिसम्बर सन् 1950 को मेरे दादाजी श्री दीपचन्द कपूर का देहान्त हो गया।

अपने अभिन्न मित्र डॉ0 मदन मोहन और श्री राम प्रकाश गुप्ता से जब मैंने यह सुना कि अब उन (श्री महाराज जी) की बोली सब समझ आती है।

तब मैंने कहा अच्छी बात है--

"मैं भी उनसे जाकर मिलूँगा।"

डॉ0 मदन मोहन जी ने बताया---

सायंकाल 4 से 5 बजे तक सत्संग का समय है, सत्संग में शामिल होकर बातें बखूबी सुन सकते हो।

उन दिनों मेरे पारिवारिक हालात ठीक नहीं चल रहे थे और कई प्रकार की उलझने पैदा हो चुकीं थीं, मैं उनको सुलझाने में लगा था। इसलिए समय नहीं निकाल सका।

अन्त में एक दिन डॉ0 मदन मोहन जी ने सूचना दी कि—
कल श्री महाराज जी का प्रोग्राम मंसूरी के नीचे किसी खड्ड में एकान्तवास में जाने का है। वे अपने साथियों को लेकर बस से 10-11 बजे के बीच वहां जाने वाले हैं।
मैंने अपनी सब उलझनों को एक तरफ (बालाए-ताक) रखकर अपने माली से कहा-
"तुम अपने बगीचे से गेंदे के दो बड़े फूल लेकर आओ, मैं सुबह ही किसी से मिलने जा रहा हूँ।'

अगले दिन प्रातः मैं 9 बजे फूल लेकर डॉ0 मदन मोहन जी के बताये हुए पर पहुँचा। यह स्थान चकरौता रोड़ पर स्थित बल्लू पुर चौक से पहले, श्री दीप चन्द खजान्ची का बाग था। सड़क से थोड़ी दूर अन्दर इस बाग के अन्दर एक टीन पोश खस्ता पुराना मकान था। इस मकान के बाहर 6 फुट चौड़ा बराण्डा था। जब मैं वहां पहुँचा तो श्री गुरू जी महाराज, श्री मंगतराम जी को साधारण रूप में बैठे हुए देखा, जैसा कि मैंने 1948 में देखा था, वैसा ही एक सफेद खेस ज़मीन पर बिछा था, उस पर श्री महाराज जी बैठे हुए थे।

डॉ0 मोहन जी, श्री राम प्रकाश व दीवान श्री रल्लाराम जी वहाँ बैठे थे। राय बहादुर रल्लाराम जी फौरन उठकर आए और कहने लगे-
"ओम जी, बहुत लेट हो गए हो, श्री महाराज जी तो अभी मंसूरी के पास एक खड्ड में एकान्त निवास के लिये जाने वाले है।"

मैंने कहा-

"कोई हर्ज नहीं, भगवान को ऐसा ही मंजूर था, लिहाजा ऐसा ही हुआ। मैं इससे ही संतुष्ट हूँ।"
मैंने वह दोनों गेंदे के फूल श्री महाराज जी के पास ले जाकर रख दिए और

झुककर सिर जमीन पर टेकते हुए नमस्कार किया।

श्री गुरूदेव जी ने उन फूलों की तरफ देखा और बोले-
"ये इतने बड़े फल कहाँ से लाए हो?" (यह फूल पांच इंच व्यास के थे) मैंने श्री महाराज जी से कहा-
"यह फूल मेरा माली बगीचे से निकाल कर लाया है। मैंने उसे कहा था कि मैं एक महात्मा जी के पास जा रहा हूँ, तुम दो फूल तोड़ लाओ ।" इतनी बात होने के बाद श्री महाराज जी ने वे फूल एक तरफ उठाकर रखदिए। तब श्री मदन मोहन ने कहा,-

“ये ही हमारे मित्र ओम कपूर है, जिन्होंने आपके पास आने के लिए हमें प्रेरित किया था।"
इस पर श्री महाराज जी बोले,-
"अच्छा, हमारी बोली इनकी समझ में नहीं आती।"
इस पर मैने कहा,---

“यह बात यथार्थ है। मैंने आपको वर्ष 1948 में राय साहब रल्लाराम जी के घर पर 15 मिनट के करीब सुना था। उस समय आपकी बात हमारी समझ में नहीं आई।”
तब श्री महाराज ने कहा,-
“अच्छा,प्रेमी! अब तुम आया करो, अब सब बातें तुम्हारी समझ में आजावेंगी।”
इसके बाद उनको ले जाने वाली गाड़ी बाहर आ गई, सभी सामान रखा जा चुका था। भगत बनारसी दास व अन्य सभी साथ जाने वाले तैयार थे, मैं भी थोड़ी दूर तक उन्हें छोड़ने के लिए गया ।

(कथानक - 2)
"बीती हुई यादें"

सिद्ध खड्ड मंसूरी (देहरादून) जून सन् 1951 की बात है। मुझे बचपन से ही पैदल चलने का शौक था। कभी-कभी मैं पहाड़ों पर भी ट्रेकिंग के लिए चला जाया करता था। हालांकि मैं बस से भी जा सकता था लेकिन मैंने पैदल चलना ही बेहतर समझा। मैंने अपनी ट्रेवलिंग की ड्रेस पहनी, अपना एक किट बैग तैयार किया और मैं पैदल के रास्ते होकर मंसूरी के लिए चल दिया।

मंसूरी पहुँच कर मैं रात को वहीं ठहरा और महारानी कलसिया से मेरा फर्म से सम्बन्धित जो काम था वह भी पूरा किया। उस रात मैंने मंसूरी ही आराम किया और सुबह जब मैं वहाँ से चला तो मुझे अचानक याद आया कि एक फकीर (महात्मा श्री मंगतराम जी) जिनसे देहरादून में अप्रैल के महीने में मेरी मुलाकात हुई थी, यहीं कहीं मंसूरी में निवास कर रहे है। उनके बारे में मैंने दीपचंद खजांची के बगीचे में जब 'वह' राय साहब रल्ला राम जी की व्यवस्था में ठहरे हुए थे, पूछ लिया था कि आप कहाँ ठहरेंगे। मै पूछताछ करता हुआ तलाश करते-करते उस जगह पहुँच गया जहाँ वह फकीर ठहरे हुए थे। यह एक पुराना धोबी घाट था जहाँ पानी का एक चश्मा बह रहा था। पास में कुछ टीन वाले मकान धोबियों के थे। उनमें एक मकान के अन्दर गुरूदेव महाराज ने अपना आसन लगाया हुआ था।

बाहर एक छोटा सा कमरा था जिसको श्री भगत बनारसी दास जी अपनी रसोई के लिए इस्तेमाल करते थे। मैं दिन के करीब दस बजे वहाँ पहुँचा और बाहर ही अखरोट के पेड़ो के नीचे जहाँ पेड़ो से छन-छन कर धूप आ रही थी, आराम से बैठ गया। अपनी ट्रेकिंग की ड्रेस निकाल कर मैंने अपने बैग में रख ली और कुर्ता पजामा जो मैं साथ बैग में ले गया था, पहन कर बैठ गया।

श्री भगत बनारसी दास से मैंने श्री महाराज जी से मिलने की अपनी इच्छा जाहिर (व्यक्त) की। वह कहने लगे:-

"गुरूदेव लघुशंका के लिए गये हैं। अभी आते ही होंगे, आप बैठिए।"

मैंने श्री भगत जी से पूछा-

"कहीं महाराज जी नाराज तो नहीं होंगे, क्योंकि यह उनका एकान्तवास का समय है और इस समय में किसी के मिलने की कहीं मनाही न हो। "

श्री भगत जी कहने लगे:---

"नहीं, नहीं आप फिकर न करें, आप बैठिए।"

लगभग 5-7 मिनट के बाद श्री महाराज जी आये और उन्होंने मुझे वहाँ देखा। मैं उठकर खड़ा हो गया। श्री भगत जी ने वहीं पेड़ो के नीचे श्री महाराज जी का आसन भी बिछा दिया। मैं भी वहीं बैठ गया।

इसके बाद श्री महाराज जी के साथ मेरे कुछ सवाल जवाब हुए। क्योंकि उनके पास जब भी कोई प्रेमी आता था तो श्री महाराज जी उससे पूछते थे—

"कहो प्रेमी कहाँ से आए हो? क्या करते हो? करो कोई सत्-विचार।'

सत्-विचार करने की बात गुरूदेव महाराज की अक्सर रहा करती थी। मेरे दिमाग में उस वक्त जो भी सवाल थे वे बहुत से तो पहले ही हल हो गये थे, उस जगह के वातावरण को देखकर। मगर एक-दो सवाल मैंने गुरूदेव महाराज से पूछ ही लिए। ये सवाल 'गुरूदेव ने कहा--' नामक पुस्तक में संग्रहित किए जा चुके हैं।

थोड़ी देर बाद श्री महाराज जी ने मुझसे कहा---

"प्रेमी, तुम भोजन कर लो।"

मैंने कहा- “महाराज जी, भोजन मेरे पास रखा हुआ है। "
उन्होंने जोर देकर कहा---
“नहीं, नहीं तुम अपना भोजन नहीं करोगे । यहाँ पर जो लंगर होता है न, वह भोजन करो।"
श्री भगत जी ने उस दिन खिचड़ी बनाई हुई थी लेकिन मिर्चे बहुत थी उसमें, और तो कोई था नहीं उनके पास। मैं ही पहुँचा। मैं खिचड़ी खाने लगा। और मेरे नाक से और आँख से पानी बहने लगा। पर मैंने कहा कुछ नहीं। क्योंकि फकीर की आज्ञा को मैं कैसे टाल सकता था। श्री भगत जी ने मेरी परेशानी को ताड़ लिया। उन्होंने उस खिचड़ी में थोड़ी सी चीनी डाल दी। अब आप अन्दाजा लगाइए कि नमक की खिचड़ी में चीनी डालकर कैसे खाया जा सकता था। मैंने किसी तरह खिचड़ी अन्दर की । महाराज जी को इसका पता लग गया। उन्होंने श्री भगत जी को बुलाकर डांटा-
“तू शैतान, इतनी मिर्च खाता है कि दूसरा आदमी क्या खाएगा। खिचड़ी में नमक तो पहले ही पड़ा था तूने चीनी भी उसमें डाल दी।" खैर, श्री भगत जी चुप हो गये।
मैंने कहा-
“महाराज जी, कोई बात नहीं, अब काम चल गया, आप इनको कुछ मत कहिए।"
बात खत्म हो गई। फिर श्री महाराज जी टीन वाले मकान के अन्दर चले गये। मैं भी वहीं जाकर उनके पास बैठ गया। उस वक्त से लेकर मैं नहीं कह सकता कि श्री महाराज जी से मेरे सवाल-जवाब भी हुए होगें लेकिन सबसे बड़ी बात उस वक्त की जो है, वह सच है कि मैं उनके पास बैठा

था। दिवार के सहारे मैं नहीं था, बीच में था, कहीं सहारा किसी प्रकार का नहीं था। मेरूदण्ड सीधा रखकर बैठने की मेरी आदत रही है। आसन से मैं बैठ गया। इतनी देर में ऐसा आहसास हुआ कि में उस स्थिति में पहुँच गया, जिस स्थिति मे कि कहा ही नहीं जा सकता कि मैं जाग रहा हूँ या सो रहा हूँ। कोई किसी प्रकार का भी विचार मेरे मानस पटल पर नहीं था। एक स्तब्ध सी अवस्था थी, जैसी कि सुन्न अवस्था होती है। जिसमें कोई भी विचार (thought) आता - जाता नहीं है। ऐसी मेरे मन की स्थिति थी, उस वक्त। मुझे पता ही नहीं था कि मैं सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ।

जब मध्यान्ह तीन बजे के करीब मसूरी के गेट आने शुरू हुए तो राय साहब दिवान रल्ला राम जी, जो उस वक्त उसी जगह पर ठहरे हुए थे एक साइड में बाहर निकल कर आये और कहने लगे---

“मंसूरी का गेट आ गया है, तीन बज गए हैं।” ऐसा समझिए कि जैसे मैं सोने की अवस्था से जागृत मे आ गया हूँ।

मैंने फौरन श्री महाराज जी के चरणों में नमस्कार किया और प्रार्थना की-

“महाराज जी, मैं इजाजत लूँगा, मुझे देहरादून जाना है और यह गेट अगर छूट गया तो फिर मुझे पैदल नीचे जाना पड़ेगा (पहले मंसूरी में गेट सिस्टम था)"

श्री महाराज ने कहा---
“प्रेमी जी, तुम आराम से जाओ, तुम्हें गाड़ी मिल जाएगी।"

मैं फिर ऊपर आया तो गाड़ी मिल गई और मैं वापस देहरादून आ गया।
इस दौरान यह जो घटना घटी मैं उसके बारे में सोचता रहा कि यह क्या हुआ है? ऐसी ही एक घटना मेरे साथ तब घटी थी जब मैं पण्ढरपुर (महाराष्ट्र) में गया था, पाण्डुरंग के मन्दिर में। बिट्ठोबा बिट्ठल कहते थे

उन्हें वहाँ। पण्डरीनाथ भी कहते हैं उस मन्दिर को। यहाँ पुराने सन्त ज्ञानदेव महाराज, नामदेव, एकनाथ महाराज, ये सब बड़े-बड़े ज्ञानी महात्मा उस मन्दिर में गये हैं और उनकी गाथायें इस मन्दिर से जुड़ी हुई है। मैं भी इन बातों को याद करता हुआ जब उस मन्दिर में बैठा था तो वहाँ भी मेरी ऐसी ही हालत हुई थी। मैं भूल ही गया कि मैं कहां बैठा हूँ। किसी ने मुझे उठाया नहीं, बिठाया नहीं, जगाया नहीं और मैं बैठा-बैठा ही समझो सो सा गया कि कोई भी होश - हवास मुझे नहीं था।

जब रात को आठ बजे आरती का वक्त हुआ तो चारों तरफ घण्टे घड़ियाल बजने शुरू हो गये। लोगों ने मुझे झकझोरा कि अरे आरती हो रही है और तू बैठा है? मैं खड़ा हो गया। उस वक्त भी ऐसी ही स्थिति (Stage) आई थी, जब मैं बिल्कुल ही भूल गया था कि मैं कहाँ बैठा हूँ।

उन सन्तों के जीवन चरित्र जो मैंने पढ़े थे या जाने थे किताबों से, या महात्माओं से सुने थे, उनकी याद मेरे दिमाग में थी। उन्हीं की याद मैं अपने दिमाग में दुहरा रहा था।

मुझे यह बिल्कुल पता न था कि मैं कहाँ बैठा हूँ, क्या वक्त है, यानि स्थान और समय दोनों का आभास मेरे दिमाग से उतर गया था।

बिल्कुल वही दशा मेरी यहाँ श्री महाराज मंगतराम जी के पास हुई।

जब मैं देहरादून लौटा तो उस बात को सोचता रह गया कि मैं तो जो कुछ हूँ, वह हूँ लेकिन यह कोई बहुत उच्च कोटि का फकीर है। जब मैंने अपनी डायरी खोल कर देखी तो उस डायरी में पता लगा कि जो प्रश्न अनुत्तरित थे, महाराज जी ने सबके उत्तर ठीक-ठीक (Up-to-the point) दिए थे और कोई लम्बा-चौड़ चक्कर नहीं था। इनमें श्री महाराज जी ने यही समझाने की कोशिश की थी कि मैं इनको किसी तरह अपने अन्दर-जज्ब (grasp कर लूँ बजाए इसके कि जबानी जमा खर्च रखूँ।

ये प्रश्न-उत्तर मेरे पास मौजूद हैं पर उनको दोहराने की मैं यहां जरूरत नहीं समझता। मैंने जितने भी सवाल किए उनका दो हरफी जवाब मुझे मिला। यह जवाब मुझे उन्होंने आन्नद से दिए, प्यार से दिए। कभी कोई झिड़कने वाली बात नहीं थी, या दोहरावट वाली बात भी नहीं थी, जो बार-बार दोहराई गई हो। यदि मैंने दोबारा कोई सवाल श्री महाराज जी से पूछा तो उसका जवाब भी पहले वाले सवाल की ही तरह मिला।

इस प्रकार मेरे जीवन में एक बार तो पन्ढरपुर के पाण्डुरंग के मन्दिर में ऐसी हालत हुई थी और दूसरी बार यहाँ श्री मंगत राम महाराज जी के पास हुई। श्री महाराज जी मेरे अन्तर में झांककर मेरे जीवन को देखते रहे होंगे कि यह किस प्रकार का जीव है, कैसे इसका चलन है, कैसे बनेगा, क्या होगा? ऐसा मेरा ख्याल है। क्योंकि वह अक्सर करके कहते थे कि ऐसा प्रेमी और कोई देखने में नहीं आया, जैसा खोजी यह हैं। कोई आदमी भी इसको किसी तरह बरगला नहीं सकेगा। श्री महाराज जी की यह बात सुनकर मुझे जबरदस्त अहसास हुआ।

इसके बाद मैं उनसे मिलने नहीं जा सका क्योंकि परिवार के कई सिलसिले पेचीदा बने हुए थे और उन्हें सुलझाने में मुझे बहुत समय लग गया। के महीने में जब श्री महाराज जी नीचे देहरादून आये तब फिर मैं उनसे मिला।

(कथानक - 3)
"बीती हुई यादें"

नवम्बर सन् 1952 का जिक्र है। जगाधरी सम्मेलन के दौरान मैं जगाधरी गया हुआ था। श्री सद्गुरूदेव महाराज के पास मैं दोपहर के समय बैठा हुआ था। मेरे दिमाग में एकदम विचार आया कि श्री महाराज जी के परिवार का हमको कुछ भी पता नहीं है कि 'ये' किस परिवार में पैदा हुए, और कैसे 'इन' के अन्दर इस प्रकार के संस्कार आये कैसे 'ये' इस अवस्था तक पहुँचे। इसके पीछे परिवार के जीवन का क्या कुछ भी योगदान है?'इन' के दादा जी कैसे थे?'इन' के मातापिता जी कैसे थे? इस बात का पता होना चाहिए। मैंने फौरन महाराज जी से सवाल किया।---

“महाराज जी,हमें आपके परिवार का कुछ पता नहीं है, क्या आप अपने परिवार की बातें बतायेंगे? कि शरीर के परिवारमें दादा, पड़-दादा और पिता वगैरह कैसे लोग थे, जिस परिवार में यह शरीर पैदा हुआ ?”

श्री महाराज जी फरमाने लगे—

“ठीक है प्रेमी, 'ये' तुम्हें बताते है, सुनो---

इस शरीर के दादा श्रीमान सुन्दर दास जी, राजा रणजीत सिंह की फौज में रिसालदार थे। उनके दो लड़के बड़े घुड़सवार थे। वे लड़ाई में एक मुहिम पर गये थे, वहाँ वे मारे गयें। इस पर उनके पिता पंडित सुन्दर दास जी को वैराग्य पैदा हो गया और वे घर छोड़कर फकीर बन गये। श्री सुन्दरदास जी के मामा के लड़कों ने बड़ी खोज करने के बाद उनका पता लगाया। आखिर स्यालकोट में फकीरों के टोले में से उनको पहचान लिया गया। कह सुन कर उनको घर लाये। घर तो वे नहीं आये पर बाहर एक

बाग में कुएं के पास वे रहने लगे। उनकी एक वैरागी फकीर से भेंट हुई, जो कि उनके स्थान से सात-आठ मील की दूरी पर रहता था। यह बड़ी अच्छी स्थिति का संत था। वह यहाँ यू०पी० से आया और यहीं कहीं समाधि उसने ली है। उसकी बड़ी सेवा पंडित सुन्दरदास ने की तो उसकी कृपा से साठ साल की उम्र में उनको एक लड़का हुआ जिसका नाम पंडित गौरी शंकर था। वह पंडित गौरी शंकर 'इन' के पिता श्री थे। उस संत ने यह भी कहा था कि यह लड़का बड़ा विद्वान, धर्माचारी और सदाचारी होगा और इस लड़के का जो छोटा लड़का होगा वह परम संत होगा। पंडित सुन्दर दास जी का लड़का पंडित गौरी शंकर ऐसा ही हुआ। वह सरदार सुजान सिंह के कार-मुख्यार और जब उनके लड़के की मृत्यु हुई तो तमाम कुल इस्टेट का नौ लाख रूपये के करीब का चिट्ठा बड़ी ईमानदारी और सच्चाई के साथ गवर्नमेंट को सुपुर्द किया। वे बड़े नेक, ईमानदार व बड़े पूजा-पाठी ब्रह्मण थे। पंडित सुन्दर दास जी उम्र मृत्यु के समय 130 वर्ष श्री महाराज जी ने बताई। पंडित गौरी शंकर जी का शरीर-पात 95 (पिचानवे) वर्ष में हुआ। इस शरीर एक भाई जो इस वक्त पंचमढ़ी (मध्य प्रदेश) में हैं। इस वक्त उनकी सौ वर्ष की उम्र है। "

श्री महाराज जी ने पुनः फरमाया--

"इन" के पिता पंडित गौरी शंकर सरदार सुजान सिंह, रईसे-आजम रावलपिण्डी के मुख्त्यार-आम थे। (श्री गुरूदेव के) शरीर की उम्र जब चार वर्ष की थी तो वह गुजर गये थे। 'इन' की माँ जी ने ही 'इन' का लालन-पालन किया।' इनके' (श्री महाराज जी के शरीर की आयु जब 25 वर्ष की थी तो 'इन' की माँ का शरीर पात हो गया।

बचपन में श्री सद्गुरू देव महाराज जब स्कूल जाते थे। तो 'इन' की माता 'इन्हें' परांठे बनाकर देती थी जिन्हें 'आप' गरीब लड़कों को देकर उनकी जौ और बाजरे की रोटी ले लिया करते थे। और उसी को खा लेते थे। और ऐसा

करके बड़े खुश रहते थे। लड़के आकर घर में कहते -"ताई, मंगत रोजाना परांठा हमें खिलाता है और हमारी सूखी रोटियाँ आप खाता है।"

जब माँ को यह मालूम हुआ तो 'उनसे पूछा'--- "यह क्या बात है?"
तब 'वे' बोले-

"इन गरीबों को परांठे खाना अच्छा लगता है और मुझे तो वह रोटियाँ ही अच्छी हैं। इनको खुश देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है।"

जीवन काल में 'इन' की माँ जी इनकी शादी के लिए बहुत जिद करती रहीं। इन्होंने कहा कि 'इन' को बड़े काम करने हैं, बड़ी देश-सेवा करनी है । 'इस' शरीर के लिए ईश्वर की आज्ञा कुछ और ही है तथा 'इन' का कुछ और ही प्रोग्राम है। अगर 'ये' इस अंधेरे विच पड़ गये तो 'इन' का अगला सारा काम रूक जाएगा। जब माँ जी ने बहुत तंग किया तो कह दिया-तेरी सेवा की खातिर 'ये' यहाँ है अगर बहुत तंग किया तो 'ये' छोड़कर चले जायेंगे। तब माता जी चुप हो गई और समझ गई। इसके बाद 'ये' घर पर ही रहे। जब 25 वर्ष की उम्र इस शरीर की हुई तो रावलपिण्डी में भाई की लड़की गुजर गई। 'इन' की माँ ने 'इन' से वहाँ जाने को कहा पहले तो 'इन्होंने' इन्कार किया। फिर माँ के जिद करने पर 'यह' रावलपिण्डी चले गये। दिन-भर वहाँ रहे और रात में लई नामक नाले के पास जंगल में तप करने चले गये। इधर दिन-भर तो माँ अच्छी तरह से रहीं। शाम होते ही उसके सिर में दर्द होने लगा। तथा तबीयत घबराने लगी। थोड़ी देर में ही प्राण-पखेरू उड़ गये। आदमी रावलपिण्डी दौड़ाया गया। दिन को एक बजे 'इनका' भतीजा 'इन्हें' ढूंढता हुआ लेई के जंगल में पहुँचा और उनके सामने जाकर चुप-चाप खड़ा हो गया। फिर कुछ देर बाद यह बोला--

"चाचा जी" - "दादी गुजर गई है। गाँव से आदमी आया है।"

'इन्होंने' जब यह सुना तो 'इन' के अन्दर दो ख्याल एक दम आये पहला ख्याल तो यह आया कि जिसकी सेवा के लिए 'ये' घर में थे, वह तो गुजर गई है, अब वहाँ जाने की क्या जरूरत है? जायदाद पुश्तैनी हैं, भाई-बन्धु आपस मे मिलकर बाँट लेंगे। बेहतर है कि वहीं से लई पार करके आगे चल दिया जावे। कुछ सेकेण्ड बाद दूसरा ख्याल आया कि नये प्रान्तों में जाकर शुरूआत करने के बजाय पहले गंगोठिया ही जाया जावे और उन लोगों की ही सेवा की जावे। पहले उनका ही हक है। फिर बाद में और प्रान्तों में जाया जावे। बस, इस दूसरे विचार के आते ही 'ये' उस लड़के से बोले-

"तुम बस अड्डे पर पहुँचो 'ये' भी इधर से आते है इस तरह 'ये' गंगोठिया आये और रिवाजिक रीति अनुसार माता का संस्कार किया। 'इन्होंने' साफ 'तौर पर कह दिया कि 'ये' ढोंग कोई क्रिया-कर्म का नहीं करेंगे। 'ये उसको ठीक नहीं समझते।

इस पर उनके भाई-बन्धुओं ने राय की 'ये' तो कुल-कलंकी है, 'ये' कुछ नहीं करेगा । इस पर 'इस' शरीर के सौतेले भाईयों ने सब कुछ किया और इसके बाद दस दिन तक सब लोग चले गये ।

'इनको' भी रावलपिण्डी चलने के लिए कहा गया पर 'इन्होंने' इन्कार कर दिया और वहीं गंगोठिया ही रहकर गाँव-गाँव जाकर समता का प्रचार करना शुरू कर दिया। बाद-अजाँ (तत्पश्चात्) 'ये' बाहर के प्रान्तों में भी गये और फिर 'इन' को रतन दास महन्त भी मिला ।

(कथानक -4)
"बीती हुई यादें"

तपोभूमि साधना स्थली कैसी होनी चाहिए इस बारे में संत ज्ञानेश्वर महाराज के विचार जो उन्होंने अपनी ज्ञानेश्वरी में अंकित किए, वह इस प्रकार है:---

" अभ्यास करने लिए एक ऐसा स्थान ढूंढना चाहिए जहाँ चित्त लगने से फिर उठने की इच्छा ही न हो और जिसे ही वैराग्य की दुगुनी वृद्धि हो। जो सन्तोष का सहकारी हो और मन को धैर्य का प्रोत्साहन देता हो। जहाँ रमणीयता ऐसी बढ़ी हो कि अभ्यास ही स्वयं साधक के वश में हो जाए तथा अनुभव आप- ही- आप हृदय में आ बसे। ऐसी जगह पर पहले भी सत्पुरूषों का निवास रहा हो। वह स्थान ऐसा होना चाहिए कि कोई पाखण्डी तथा नास्तिक मनुष्य भी उसके पास होकर निकले तो उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न होकर तपश्चर्या करने का मन हो यदि कोई साधारण मनुष्य अपने मार्ग पर चलता हुआ अचानक वहाँ आ पहुँचे और वह अपने घर जाने की कामना रखता हो, तो भी उसका मन वहाँ से जाने का न हो, तभी उस स्थान का गौरव है। किसी राजा या विलासी पुरूष को भी उस स्थान को देखते ही ऐसा लगे कि अपना राज-पाट अथवा भोग-विलास का जीवन त्याग कर हम यहीं पर रहते तो कितना अच्छा होता !

इस प्रकार जो स्थान उत्तम निर्मल और अति शुद्ध हो वहाँ पर ब्रह्मानन्द का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। फिर इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि "वहाँ योग के अभ्यार्थियों का ही निवास हो, अन्य साधारण मनुष्यों का रहना-सहना अथवा आना-जाना न हो। वहाँ पानी के झरने (चश्में) होने चाहिए जिनका जल वर्षा ऋतु में भी निर्मल रहे। वहाँ

सूर्य की उष्णता सौम्य हो और इतनी गर्मी न हो कि वह कष्टदायक प्रतीत होने लगे। वहाँकी वायु मन्द और शीतल हो । वहाँ शोर-गुल नहीं होना चाहिए। जंगली जंतुओं की भी वहाँ अधिकता न हो, पर थोड़ी संख्या में पक्षियों का होना अच्छा है।"

एक दिन श्री भगत बनारसीदास जी इत्तिफाक से (संयोग वश) भ्रमण करते हुए रिस्पना नदी के नाले के साथ-साथ उत्तर की ओर कुछ दूर जाने के उपरान्त एक उजड़े हुए उपवन में पहुँच गये। यहाँ पर 40 के लगभग देशी आम के पेड़, 2 पीपल के पेड़ एवं एक कटहल का पेड़ था। दो -एक कुदरती चश्में भी नजर आये। श्री भगत जी को यह स्थान कुछ पसन्द आया और वह श्रीसद्गुरूदेव महाराज को भी यह स्थान दिखाने के लिए दूसरे दिन ले गये।

इस बारे में हमारे एक प्रेमी स्वर्गीय श्री रामलाल जी नारंग ने निम्न प्रकार इसका विवरण लिखा है, जो तपोभूमि-साधना स्थली की 'आगन्तुक पुस्तिका' में अंकित है।

'जून, सन् 1953 केलाघाट, राजपुर की बात है। श्रीसद्गुरूदेव महाराज मंगतराम जी चौमासे के दिनों रिस्पना नदी के किनारे नगर से बाहर एक तम्बू में निवास कर रहे थे।

एक दिन वे हम कुछ प्रेमियों को साथ लेकर बहती हुई नदी के किनारे ऊपर बढ़ने लगे। डैम को पार कर जब हम जूड़ गाँव मार्ग से ऊपर पहुँचे तो चारों ओर पहाड़ियों से घिरी हुई उपत्यका (घाटी) में 3-4 चश्में बह रहे थे। इस भूखण्ड के तीनों ओर रिस्पना नदी घूम रही थी इस भूखण्ड में स्थित एक पीपल का पेड़ था जो गड़रियों ने अपने जानवरों के चारे के लिए पत्तों से खाली कर दिया था। श्री सद्गुरूदेव महाराज बहुत तेज चलते थे। हम सब उस उपत्यका के भूखण्ड में जाकर एक तरफ एक

पत्थर पर ढालू जमीन का सहारा लेकर बैठ गये। बड़ा शांत, पुरसकून शान्तिमय वातावरण था। पीपल का वृक्ष हरा था, पर ठूंठ का ठूंठ खड़ा था। श्री सद्गुरूदेव महाराज बड़ी करूणा भरी आवाज में बोले "आजडियों ने किस बेरहमी से इसकी टहनियाँ काट रखी हैं। चश्में के बारे में पूछ-ताछ की गई तो पता चला कि वे बारहमासी हैं। गर्मी-सर्दी, वर्षा व सूखे में हमेशा चलते रहते हैं। पास ही एक पुराना, मन्दिर की तरह का खण्डहर नजर उसके छत का कलश थोड़े-थोड़े पत्थरों को बढाकर बनाने का प्रयास किया गया था, जोकि अब खण्डर था। उस भूखण्ड में चालीस के करीब पेड़ थे। ऐसा लगता था कि यकीनन यह किसी बड़े आचार्य की तपस्या-भूमि रही होगी।

श्री सद्गुरूदेव ने फरमाया---

"प्रेमी,अगर यहाँ एक आश्रम बन जाए तो कैसा रहेगा?"

स्वर्गीय श्री रामलाल जी नारंग बहुत ही मुँह-फट (स्पष्ट वक्ता) प्रेमी थे। वह लिखते है----

"महाराज जी, आप भी क्या कह रहे हैं। ऊपर देखिए यहाँ कुछ आश्रमों की कमी है, क्या ? देहरादून और राजपुर में तो आगे ही आश्रमों की भरमार हैं । शाहन्शाही आश्रम, रामतीर्थ आश्रम, श्रद्धानन्द आश्रम, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राधास्वामी आश्रम, मेहर बाबा धाम आश्रम, आन्नदमयी माँ आश्रम वगैरह-वगैरह। "

मैंने (रामलाल नारंग) बात खत्म भी नहीं की थी कि श्री सद्गुरूदेव बोले- "लाल जी, ये सब आश्रम तो एक पिकनिक स्थान हैं। 'ये' यहाँ एक रियाजतगाह (तपस्थली) चाहते हैं। जहाँ प्रेमी सज्जन, सत् के मुतलाशी (खोजी) एकान्त सेवन करते हुए मालिक का कर सकें।"

हम सब लोगों का सिर उनके इस आदेश के आगे झुक गया। तदुपरान्त के 'तपोभूमि- साधना स्थली' का निमार्ण हुआ और इस तपस्थली नियम-उपनियम निर्धारित हुए तथा इस पवित्र नैसर्गिक भूखण्ड का पुनः। उद्धार होकर यह
"समता योग साधन तपोभूमि के नाम से प्रख्यात हुआ।
श्री सद्गुरूदेव महाराज द्वारा---
तपोभूमि- साधना स्थली के लिए निर्धारित नियमः--
श्री सद्गुरूदेव महाराज मंगतराम जी ने अपने कर-कमलों से तपोभूमि- साधन स्थली के निम्नलिखित नियम अंकित किये हैं---
"समता योग साधन, तपोभूमि, राजपुर (देहरादून) के नियम दिनांक 6-8-1953:-

1. तपोभूमि की हदूद (सीमाओं) में तमाम मनशीयात (मादक द्रव्यों) और माँस-भक्षण की पूरी-पूरी पाबन्दी है।

2. तपोभूमि में तमाम देहरादून निवासी प्रेमी माहवारी सत्संग कायम रखें।

3. खास त्यौहारिक सत्संग के बगैर माताओं को तपोभूमि साधना स्थली में सत्संग में शामिल होने की इजाजत न होगी।

4. माताओं का नंगे सिर तपोभूमि की हदूद (सीमा) में दाखिल होने की इजाजत न होगी और न ही रात को ठहरने की।

5. जो-जो समतावादी तपस्या की खातिर तपोभूमि में ठहरना चाहे, वह अपना खर्च खुद (स्वयं) बरदाश्त (बहन) करें।

6. खास कोई, विरक्त रूप में प्रेमी होवे तो उसका खर्च देहरादून के प्रेमी बरदाश्त (सहन) करें।

7. किसी अजनबी (अपरिचित) को तपोभूमि में रात को ठहरने की इजाजत न होगी।

8. अधिक समा (समय) कोई तपोभूमि में ठहरना चाहे तो श्री सद्गुरूदेव महाराज (अब आश्रम प्रबंधक) की आज्ञा से ठहर सकेगा।

9. तपोभूमि में पलंग वगैरह और दीगर तमाम किस्म का फर्नीचर बिछाने की इजाजत न होगी। समता के पाँच उसूलों यानि सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत. सिमरण का सही उपयोग पूर्ण रूप में तपोभूमि में होना चाहिए।

10. सैरो-तफरीह (पिकनिक), चौपड़, ताश व किसी किस्म की भी सदाचारी जीवन के विरूद्ध कार्यवाही करने की मुतलिक (सर्वथा) इजाजत (आज्ञा) नहीं है।

तमाम समतावादी प्रेमी इन सत्-असूलों पर पूरे पूरे कारबन्द रहें।

(कथानक - 5)
"बीती हुई यादें"

मैं श्री महाराज मंगत राम जी के पास बैठा था। वार्ता चल रही थी। श्री गुरूदेव ने बोलना शुरू किया। "पंजाब प्रांत में एक बड़े ऊँचे संत हुए हैं जिनका नाम था 'छज्जू शाह और लोग उनको छज्जू भगत के नाम से जानते थे। छज्जू भगत बड़े ऊँचे संत हुए है। मुसलमान और हिन्दू फकीर अपने-अपने मसले और जिज्ञासा शांत करने के वास्ते भी उनके पास आया करते थे। वे लोगों से ज्ञान-चर्चा भी करते थे। उनके घर में सिर्फ तीन आदमी थे। एक उनका लड़का, दूसरी उनके लड़के की धर्मपत्नी और तीसरे वे स्वंय आप थे। वे सब ऊपर एक चौबारे पर रहते थे। नीचे उसके दुकानें थी।

वहीं लाहौर शहर के एक पठान रहते थे, जो कि बड़े नेक ख्याल के आदमी थे और भगत जी के प्रति उनका बड़ा आदर सत्कार था। इत्तिफाक से (संयोग वश) एक दिन पठान और उसकी बीवी को ख्याल आया कि उन्हें हज करने के वास्ते जाना चाहिए। जाने से पहले उन्होंने यह तय किया कि वे अपनी सौ अशर्फियों की दौलत को बतौर अमानत भगत जी के पास रख देंगे। खान साहब इसी गर्ज से वह अशर्फियाँ लेकर भगत जी पास पहुँचे और भगत जी से अर्ज की कि वह और उसकी बीवी हज करने के वास्ते जाना चाहते हैं लिहाजा हम अपनी दौलत बतौर अमानत रखना चाहते हैं हज करके वापस आने पर अपनी दौलत वापस ले लेंगे।

खान की बात सुनकर भगत जी ने उससे कहा---

"खान साहब, आपने यह गलत फैसला ले लिया। मैं तो फकीर आदमी हूँ। मेरे पास न तो कोई तिजोरी न इसकी हिफाजत का मेरे पास न कोई इन्तजाम है,न मेरे पास कोई चौकीदार वगैरह (आदि) है। तो मैं इसकी

कैसे देख-भाल करूँगा। आप इसको किसी साहूकार के पास रखो वह ज्यादा बेहतर होगा। वही इसकी देख-भाल भी कर सकेगा और वही इसको सम्भालने वाला सही आदमी होगा।

भगत जी की इतनी बात सुनकर खान घर वापिस आ गया और उसने अपनी बीवी से कहा कि भगतजी तो इसे अपने पास रखने के वास्ते इन्कार हैं। उसकी बीवी ने कहा-

“नहीं, हमने यह दौलत किसी भी साहूकार के पास नहीं रखनी है। हमने तो सिर्फ उन्हीं के पास रखनी है। वे जैसा जी करे वैसा रखें क्योंकि हमें और किसी का यकीन ही नहीं है। वे अल्लाह वाले इंसान हैं और ईमानदार हैं।

खान साहब दोबारा उन अशर्फियों को लेकर भगत जी के पास पहुँचे और भगत जी से जिक्र किया कि भगत जी, मेरी बीवी नहीं मानती है। वह तो यही कहती है कि यह अमानत तो आपको ही रखनी पड़ेगी। किसी दूसरे पर हमारा यकीन नहीं है।

भगत जी अब धर्म संकट में पड़ गयें। उनके लिए एक पशो-पेश खड़ा हो गया उन्होंने खान साहब से कहा--

"अच्छा, वह जो दालान है उसमें एक ताक है। ताक में बहुत सी चीजें पड़ी होगीं। उन्हें एक तरफ करके इस थैली को वहाँ टिका दो। जब आप वापस आवोगे तो यह थैली वहीं आपको मिल जावेगी।"

खान साहब ने जाकर उसी ताक में उस अशर्फियों की थैली को टिका दिया और वापिस घर चले गये।

कुछ काल के बाद खान साहब और उनकी बीवी हज से वापस आ गये। उन दिनों लोग पानी के जहाज से या पैदल के रास्ते हज करने जाया करते थे। हवाई जहाज उन दिनों नहीं होते थे। घर वापस आकर उन्हें याद

आया कि उन्होंने अपनी दौलत भगत जी के पास रखी थी लिहाजा उसे जाकर ले आया जाए। खान साहब भगत जी के पास अपनी दौलत लेने के वास्ते पहुँचे। खान साहब ने भगत जी से प्रार्थना की:-

“सांई लोगो, मैं अपनी अमानत आपके पास छोड़कर गया था। मुझे मेरी लौटा दें।"

भगत जी ने खान साहब से पूछा:---

“हाँ, हाँ तुमने अपनी अमानत कहाँ रखी थी ?"

भगत जी ने उससे कहा-

"देखो, वहीं पर होगी जाकर उठा लो।”

खान साहब वहाँ गये और उन्होंने देखा कि ताक पर धूल पड़ी हुई है। धूल झाड़कर उसने वह थैली उठाई और घर की तरफ चल दिया।

जब खान साहब घर पहुँचे तो उन्होंने उन अशर्फियों को गिनना शुरू किया। गिनने पर वे अशर्फियाँ पिचानवे निकलीं। यानि पाँच अशर्फियाँ कम निकलीं। अब खान साहब को बड़ा गुस्सा आया। यह कैसा भगत है? इसने तो हमारी पाँच अशर्फी कम कर दी।

खान साहब ने न तो अपनी बीवी से पूछा और न किसी नौकर-चाकर से पूछा, बस उन अशर्फियों को जैसे की तैसी खुली छोड़कर भगत जी को गालियाँ बकता भगत जी के घर की तरफ चल पड़ा। रास्ते में उसे और भी बहुत से लोग मिल गये। उन्होंने भगत जी के बारे में जब यह सुना तो वे भी खान साहब के साथ हो लिए। वे भी उसके साथ-साथ भगत जी को गालियाँ बकते हुए चल दिए। लिहाजा इस तरह दस-पन्द्रह आदमी इकट्ठे होकर भगत जी के चौबारे पर पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने हल्ला-गुल्ला करके कोहराम मचा दिया।

भगत जी अपने शांत स्वाभाव से बैठे रहे। उन्होंने उन्हें कुछ नहीं कहा। जब सब लोग कह-सुन कर थक गये तब उन्होंने कहा कि इस भगत से तो पूछो। यह भगत बना फिरता है कि इसने क्या किया उन अशर्फियों का? क्यों इसने ऐसा किया? क्यों निकाली इसमें से अशर्फियाँ इसको कोई डर नहीं है कि दूसरे की अमानत को खा गया।"

अब भगत जी ने विनम्रता पूर्वक कहा:--

"देखो भाई खान साहब, जब आप आये थे मैं तो इस वास्ते नहीं बोला कि आप लोग गुस्से में थे तो आपका गुस्सा था और जब तक आदमी बोल नहीं लेता तो शांत नहीं होता। अब आपने बोल लिया तो अब आप मेरी बात सुनना चाहते हैं तो मैं सुनाने को तैयार हूँ। जब आप मेरे पास आये थे तो मैंने आपको बहुत मना किया कि मेरे पास कोई इंतजाम (प्रबन्ध) नहीं है, न ही मेरे पास कोई चौकीदार है, न ही कोई तिजौरी है, जो इसकी हिफाजत कर सकेगा। आपने जिस जगह रखी थी वहीं से उठाकर आप उसी हालत में ले गये। मैंने तो उसको देखा तक भी नहीं। जब आप लाये थे तब आपने नहीं गिनी थी, न मैंने गिनी थी। जब आप यहाँ से ले गये तब भी न आपने गिनी, न मैंने गिनी । फिर भी मैं यकीन करता हूँ कि आप ईमानदार आदमी हैं और आप झूठ नहीं बोलते हैं। सच्चे लोग हैं। तो लिहाजा जो आप कह रहे है, पाँच अशर्फी कम हैं जरूर कम होंगी। अब पता नहीं किस तरह कम हो गई, कहाँ कम हुई, कौन ले गया, यह मैं नहीं जान सकता। तो लिहाजा मैंने तो उनको देखा तक भी नहीं। मेरा लड़का काम से वापस आयेगा तो मैं उससे कहूंगा। वह आपकी इन पाँच अशर्फियों का बन्दोबस्त कर देगा। वह आपके इस नुकसान को पूरा कर देगा। इतनी बात कह कर भगत जी चुप हो गये।

अब लोगों ने फिर हल्ला मचाना शुरू कर दिया। वे सब कहने लगे- "देखा कितना शैतान है ये । बेईमान कहीं का।"

“पहले तो अशर्फियाँ गयाब कर दी । गायब करने के बाद अब मानत भी हैं। देने को भी तैयार है । ऐसा है यह भगत। यह कहाँ का भगत है?"

यह कहकर लोग तितर-बितर हो गये। खान साहब भी अपने घर पहुँचे। घर पहुँचते ही खान साहब की बीवी उनके पीछे पड़ गई कि तुम घर में इन अशर्फियों को खुला छोड़कर ही चले गये। यह भी नहीं देखा कि घर में नौकर-चाकर भी हैं। अगर मैं न आती तो कोई इनमें से गायब हो जाती। खान साहब ने गुस्से में भरकर उसे कहा-

“तू ही है सब शैतान की जड़। तूने ही अशर्फियाँ भगत के पास रखवाई थीं। वह भगत इतना बेईमान निकला कि मेरी पाँच अशर्फी कम कर दी।"

खान की बीवी ने आश्चर्य से पूछा- “पाँच अशर्फी ?” कितना अशर्फियाँ है?
खान ने कहा- “पिचानवे अशर्फियाँ”

खान की बीवी ने कहा- “पिचानवे तो थी, वो। पाँच तो मैं साथ ले गई थी शायद हमें रास्ते में जरूरत पड़ जाए।" अब खान साहब की आंखें खुली की खुली रह गई। कहने लगा मैंने तो भगत जी को बहुत बुरा भला कहा और उन्हें गाली भी दे आया। यह तो बहुत बड़ा गुनाह हो गया।

खान की बीवी ने खान को खूब डाँट पिलाई-- “तुमने तो बहुत बड़ा गुनाह किया। तुम तो कहीं के नहीं रहे। वह तो 'अल्लाह' वाला आदमी है। “अल्लाह ' वाले आदमी पर तुमने झूठी तोहमत लगाई है। तुम्हें तो 'अल्लाह' भी नहीं बख्शेगा। तुम तुरन्त जाकर उनसे अपना गुनाह बख्शवाओ वरना तुम पर 'अल्लाह' का कहर नाजिल होगा।"

पठान बड़े भावुक और तुनक मिजाज किस्म के होते हैं। अब खान साहब गले में कपड़ा डालकर और दोनो हाथ ऊपर उठाकर सब लोगों को सम्बोधित करते हुए ‘अरे भाई मेरे से बहुत बड़ा गुनाह हो गया। भगत जी

तो बड़े अच्छे आदमी है। वे नेक और भले बन्दे हैं, अल्लाह के बन्दे हैं। मैंने उन्हें बहुत बुरा-भला कह दिया। आप लोग मेरे साथ चलो ताकि मैं भगत जी से माफी माँगू और वे मेरा गुनाह बख्श दें।"

अब फिर सब लोग इकट्ठे होकर भगत जी के घर की ओर चल दिए। रास्ते भर वे भगत जी की तारीफ करते हुए जा रहे थे। जो लोग पहले गाली बकते जा रहे थे, वे अब भगत जी की तारीफ कर रहे थे। भगत जी तो बड़े नेक इंसान हैं और सबका भला करने हैं।

भगत जी के पास पहुँच कर उन्होंने भगत जी के चरणों में नमस्कार किया। खान साहब रोने लगे। रो-रो कर आंसू बहाने लगे। भगत जी को घबराहट हो गई कि खान साहब को मेरी बात पर यकीन नहीं कि हुआ मैं इनकी अशर्फियां वापस कर दूँगा या नहीं। इस वास्ते ये फिर घबराये हुए आ गये। भगत जी ने कहा--

"खान साहब, आप घबराओ मत, मेरा लड़का अभी आया नहीं है, वो जैसे ही आवेगा मैं उसे कहूँगा वो जैसे भी होगा पाँच अशर्फियों का बन्दोबस्त करके आप को दे देगा।

खान साहब ने कहा--

महाराज, नहीं वो तो गलत बात है। सांई लोगों, वह तो पाँच अशर्फियाँ कम ही थीं। वो तो पूरी 100 नहीं थी। उसमें से पाँच तो मेरी बीवी ने निकाल ली थी। तो लिहाजा वो जितनी थी, उतनी की उतनी निकली।

यह सुनकर भगत जी बोले--

"अच्छा, वो पूरी हो गई। फिर घबराने की क्या बात है?"

खान साहब ने अर्ज की--

“महाराज, मुझे माफ कर दो।”

भगत जी कहने लगे--

“तुमने क्या कसूर किया जिसकी तुम माफी मांग रहे हो। तुम्हें मालूम नहीं था-- कि वे पहले से पाँच अशर्फियाँ कम हैं लेकिन अब तुम्हें पता लग गया। अब इसमें माफी की क्या बात है? "

उस वक्त छज्जू भगत ने दोहा पढ़ा जो कि बड़ा मार्मिक है—

स्वाह तेरी निंदिया, ते स्वाह तेरी उस्तत ।
छज्जू तो, उत्थे का उत्थे ही है।

जब तू मेरी बुराई कर रहा था और अब तूने मेरी बड़ाई करनी शुरू कर दी, मैं इन दोनों को राख डालता हूँ यानि दोनों स्थितियों की मूल्यॉकन (Value) मेरी दृष्टि में राख के बराबर है। छज्जू की स्थिति तो तेरी निंदा करने पर और तेरी तारीफ पर एक जैसी है। जिस व्यक्ति का ईश्वर विश्वास पक्का हो जाता है उसकी समदृष्टि हो जाती है। यानि ऐसी स्थिति परम शांत स्थिति है।

(कथानक - 6)
"बीती हुई यादें"

श्री सद्गुरूदेव महात्मा मंगत राम जी ने मुझे एक वाक्या सुनाया। एक दिन उन्हें (महात्मा मंगत राम जी को) एहसास हुआ कि चलो फकीर महात्माओं के दर्शन किए जावें। महाराज जी ने एक महात्मा की बड़ी भारी ख्याति सुन रखी थी, जिनका नाम श्री अमुक महाराज था। जो गर्मियों में गंगोत्री चले जाते थे और सर्दियों में ऋषिकेश में मुनि की रेती में आ जाते थे। वे गंगा में खड़े होकर तपस्या करते थे। प्रातःकाल गंगा में दाखिल हो जाते थे और सांयकाल सूरज छिपने बाद पानी से बाहर निकलते थे। ये महात्मा केवल मात्र एक वक्त चने की रोटी खाते थे। इन महात्मा जी का शरीर कुछ दिनों से अस्वस्थ चल रहा था और उन दिनों वे एक वैद्य की औषधि सेवन कर रहे थे।

इत्तिफाक से (संयोगवश) इन्हीं दिनों श्री महाराज मंगतराम जी उन महात्मा से मिलने के लिए वहाँ पहुँचे। वहाँ महात्मा जी से मिलने काफी लोग जमा थे उन्हीं लोगों के बीच श्री महाराज जी भी जाकर बैठ गये। उन दिनों वे महात्मा जी कोई दवा का सेवन कर रहे थे। वह दवा सेब के मुरब्बे के साथ ले रहे थे । इत्तिफाक से उस सेब के मुख्बे को उनका कोई शिष्य खा गया। महात्मा जी को जब दवाई खाने के वक्त सेब का मुरब्बा नहीं मिल, तो उन्हीं बड़ी बेचैनी हुई और जो कोई भी उनके पास मिलने के लिए आता था, उसे बार-बार यही कहते कि देखो, यहाँ सेब का मुरब्बा रखा हुआ था, उसे पता नही कौन खा गया?

इस बात को उन महात्मा जी ने कई बार दोहराया। जो भी उनसे मिलने आता था, उसके सामने वे सेब के मुख्ये की बात जरूर दोहराते थे। श्री महाराज महात्मा मंगत राम जी वहाँ से उठकर चले आये। श्री महाराज जी ने मुझे बताया-

"यह कहाँ का महात्मा है। इसने इतनी तपस्या की है कि अपने जीवन का सारा वक्त तपस्वी जीवन बिताने में ही लगा दिया है लेकिन इसकी प्रवृत्ति का यह हाल है कि यह सेब के मुरब्बे में ही लिपटी हुई है।"

इसके बाद श्री महाराज जी फिर किसी महात्मा के पास मिलने के लिए नहीं गये। उन्होंने जान लिया कि जब बड़े-बड़े महात्माओं का यह हाल है तो छोटे-मोटे महात्माओं की तो बात ही क्या है?

(कथानक -7)
"बीती हुई यादें"

पीरान कलियर रूड़की के पास एक कस्बा है। वहाँ पर एक फकीर रहते थे। अब उन का शरीर नहीं रहा। उनका शरीर दुबला पतला था और वे कुछ बोलते नहीं थे। जो भी भोजन उनके पास आता था, उसमें से थोड़ा सा लेकर बाकी वह लोगों में बाँट देते थे। उनकी एक ही आवाज बड़ी गजब की थी। और उसके अलावा वे कुछ बोलते ही नहीं थे। वह आवाज थी-

“या रब तू ही तू, या रब तू ही तू"

सुबह से लेकर रात तक, जब तक कि उनकी आँख नहीं लगती थी, वह रूक-रूक कर यही बोलते रहते थे। इसका भाव यह है कि-

“हे परमात्म सत्ता तेरे अलावा और कुछ नहीं है। बस तू ही तू है।"

ऐसा भाव रखने से वे हर घड़ी हर लम्हा उस परमात्मा की याद में ही रहते थे। बाद में पता चला कि जब उनका शरीर शांत हुआ तो बड़ी शांति के साथ वे इस शरीर को छोड़ कर चले गये। इससे हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं. कि किसी मन्त्र-यन्त्र की जरूरत नहीं है, परमात्मा की रियाजत (भक्ति) करने में। केवल एक ही चीज की जरूरत है कि आप का विश्वास और आप का निश्चय ऐसा दृढ़ होना चाहिए कि एक मात्र प्रभु सत्ता के अलावा और कुछ नहीं है। वह सिर्फ "वह ही है" ऐसा भाव जब आप का पक्का बनेगा तो आप बगैर किसी मंत्र के भी “परम सत्ता" के नजदीक पहुँच जायेंगे।

श्री गुरूदेव महाराज ने मेरे से यह व्याख्यान सुनकर अपनी सहमति जताई और कहने लगे प्रभु के प्यारों की अपरम अपार महिमा है। वह पता नहीं किस खोज में मस्त रहते हैं। ऐसे फकीरों के पास जाते रहा करो कल्याण होगा।

(कथानक -8)
"बीती हुई यादें"

सन् 1951 के 'समता सम्मेलन' के समय का जिक्र है। श्री सद्गुरूदेव महात्मा मंगतराम जी महाराज अपने कमरे में बैठे हुए थे। जगाधरी के एक सज्जन महाराज जी से मुलाकात करने के वहाँ पहुँचे और उसने नम्रता के साथ श्री गुरुदेव महात्मा से अर्ज की-

"महाराज, मेरी हालत बहुत खराब है, मैं बहुत परेशान हूँ। मुझे आप कोई ऐसा नम्बर बता दें जिससे वह नम्बर लगा कर मैं अपना कल्याण कर लूँ।"

महाराज उस व्यक्ति पर सख्त तेज हुए और डाँटते हुए बोले-

"बेईमान, तुम यहाँ सट्टा पूछने आये हो, सट्टे का नम्बर पूछने आये हो। तुम यहाँ से तुरन्त भाग जाओ, नहीं तो तुम पर कोई नागहानी आफत बरपा हो जायेगी।"

वह व्यक्ति डरकर गिरता पड़ता दरवाजे तक पहुँचा और उसके बाद वह ऐसा सरपट भागा कि जैसे उसके पीछे कोई मुसीबत आ रही हो।
इससे यह साफ़ पता चलता है कि महाराज जी इस प्रकार के लोगों को अपने पास नहीं बैठने देते थे।
देहरादून में भी जब श्री महाराज जी केलाघाट में ठहरे हुए थे। मेरा एक परिचित, जिसका नाम 'हकीम' था कपड़े की फेरी का काम करता था। वह हमारी कपड़े की दुकान से फेरी के लिए सामान ले जाता था और शाम को वह सामान की गठरी लाकर दुकान में रख देता था। अगले दिन वह उस सामान को चैक करा कर जिस सामान की जरूरत होती थी दुकान से ले जाता था। वह एक अच्छा ईमानदार आदमी था। इत्तिफक से किसी ने उसे बताया कि यहाँ एक फकीर ठहरे हुए हैं। वह व्यक्ति श्री महाराज जी को ढूंढता हुआ केलाघाट जा पहुँचा, जहाँ श्री महाराज जी उन दिनों ठहरे हुए थे। मैं भी इत्तिफाक से वहीं पर मौजूद था। उसने मुझे वहाँ देखा तो वह मेरे पास आ गया। वह मुझसे कहने लगा-

"मेरा कुछ काम करा दो इन 'महात्मा' से।"

मैंने कहा- "यहाँ तो कोई महात्मा नहीं हैं यह तो एक साधारण आदमी है।"
उसने पूछा- "तुम्हें नहीं मालूम?
मैंने भोलेपन में जवाब दिया-

"नहीं मुझे मालूम नहीं, क्योंकि मुझे इतनी अक्ल नहीं हैं कि मैं यह पहचान सकूँ कि 'यह' महात्मा हैं। (हालांकि मैं श्री महाराज जी का शिष्य था लेकिन मैं उस व्यक्ति का दिल देखना चाह रहा था)
वह व्यक्ति जोर देकर कहने लगा-

अरे, यह तो बहुत ऊँचे महात्मा हैं। "देखो इनके हाथ कितने लम्बे हैं। इनकी पेशानी (माथा) देखो, किस कदर नूर चमक रहा है। यह मार्फत की तरफ बढ़े हुए महात्मा हैं।" अब उस व्यक्ति ने अपना आने का असली मकसद मुझे बताया-

"तुम मेरा एक काम करा दो। मेरी हालत आजकल बहुत खराब है। मुझे सट्टे का नम्बर इनसे दिलवा दो।"

मैंने उस व्यक्ति को श्री महाराज जी का जगाधरी का किस्सा सुनाया कि किस तरह श्री महाराज जी ने इस सट्टे के नम्बर की बात के लिए उस व्यक्ति को फटकारा था। मैंने उसे सलाह दी कि तुमने अच्छा किया जो यह बात मुझे बता दी वरना तुम्हारा भी वही हाल होता जो उस आदमी का हुआ था। यह सुनकर वह तुरन्त वहाँ से भाग गया।
बाद में श्री महाराज जी ने मुझे बुलाकर पूछा-
"ओम, यह कौन आदमी था जिससे त बातें कर रहा था?
मैंने बताया-
"महाराज जी, यह भी वही जगाधरी वाले सट्टे का नम्बर पूछने वाले का नमूना था। यह भी आपसे सट्टे का नम्बर पूछने के लिए आया था।"

यह सुनकर श्री महाराज जी मुस्करा दिए।

(कथानक - 9)
"बीती हुई यादें"

तपोभूमि- आश्रम सम्बन्धी श्रीसद्गुरूदेव महाराज जी की कुछ यादें:

एक दिन दोपहर अगस्त सन् 1953 ई० तुलतुलिया चश्मे पर चौमासे में ठहरे हुए तम्बू में प्रेमी भाई पंडित राम जी दास, भगत बनारसी दास, श्री. हेमराज गेरा एवं श्री ओम कपूर के समक्ष श्रीसद्गुरूदेव ने उच्चारण फरमाया कि-

"यह रियाजतगाह (तपोभूमि) पूर्ण रूप में रियाजतगाह ही रहनी चाहिए। तपस्या के मुतलाशी (जिज्ञासु) समतावादी साधक प्रेमी अपने कामों से फरागत पाकर पाँच सेर दलिया और एक नमक की थैली लेकर तपोभूमि पर चढ़ जावे और पूरा महीना एक वक्त दलिया उबाल कर और नमक डालकर एक वक्त सेवन करें और अपने भजन में लग जावे, और इस तरह पूरा महीना समाप्त कर देंवे।"

श्रीसद्गुरूदेव महाराज तुलतुलिया बावड़ी (केलाघाट, राजपुर) के निकट एक तम्बू में सन् 1953 के वर्षा काल में निवास कर रहे थे। देहरादून के प्रेमी अक्सर अपने कामों से फरागत पाकर रात्रि को श्रीसद्गुरू महाराज दर्शनार्थ व सत्संग के लाभ हेतु प्रतिदिन तम्बू में पहुँच जाया करते थे।

एक दिन श्रीसद्गुरूदेव महाराज ने फरमाया।

श्री सद्गुरूदेव :-

“प्रेमी, मदनमोहन (डॉक्टर मदनमोहन, नेत्र विशेषज्ञ, देहरादून) तपोभूमि-साधना स्थली का स्थान खरीद लिया गया है, तुम जरा जाकर देख आओ।"

श्रीसद्गुरूदेव की आज्ञा पाकर डाक्टर मदनमोहन 'तपोभूमि-साधना स्थली' देखने चले गये। जब वह 'तपोभूमि-साधन स्थली' देखकर लौट तो श्री सद्गुरूदेव महाराज ने पूछा---
“लाल जी,कैसा स्थान है?"
डाक्टर मदनमोहन ने जवाब दिया---
“महाराज, बड़ा उत्तम स्थान है लेकिन पहुँचने का रास्ता बड़ा सख्त और कष्टदायक है।"
इस पर श्री सद्गुरूदेव महाराज मुस्कराये और बोले--
“प्रेमी मदनमोहन,तुम्हारे लिए पल्टन बाजार के किसी चौबारे पर तपोभूमि बनवा दी जावे?"
यह सुनकर डॉक्टर मदनमोहन खामोश हो गये और श्री महाराज जी की बात पर विचार में खो गये। कुछ क्षणों के बाद श्रीसद्गुरूदेव महाराज बड़े दुलार की भाषा में डॉक्टर मदन मोहन जी से बोले---

“लाल जी, तपोभूमि तपस्यागाह होती है। वहाँ पर तो कष्ट उठाकर ही जाया जाता है और कष्ट उठाकर ही रहा जाता है।"

स्वर्गीय श्री रामलाल नारंग जी ने देहरादून और राजपुर में स्थित आश्रमों के बारे में जब श्री सद्गुरूदेव महाराज से जिक्र किया और यह प्रभाव डालने का प्रयास किया कि यहाँ तो पहले ही बहुत आश्रम बने हुए है, इस नये आश्रम के बनाने की क्या ज़रुरत है। इस पर श्री सद्गुरूदेव महाराज ने बड़े प्रेम से समझाते हुए कहा----

“यह स्थान (तपोभूमि-साधना स्थली) दुनियादारों के अल्पकालीन विश्राम के लिए है। ये यहां एक ऐसी रियाज़तगाह' चाहते हैं जो

साधक को उस परमसत्ता का एहसास करा सके।"

श्री सद्गुरूदेव महाराज का यह आदर्श और यह फरमान 'तपोभूमि-साधना स्थली' के लिए निर्धारित है। समतावादी प्रेमियों का कर्त्तव्य है कि वे इस आदर्श को दृढ़तापूर्वक कायम रक्खें और इस तपस्थली की पूर्ण रक्षा करें तथा इस आदर्श की रक्षा करते हुए श्रीसद्गुरूदेव के वचन पालन का सबूत देवें, क्योंकि किसी आश्रम के नियम ही 'आश्रम' है। यदि आश्रम के अन्दर निर्धारित नियमों का पालन नहीं किया जाता है तो वह आश्रम, आश्रम नहीं रह जाता और एक साधारण स्थान की संज्ञा में आ जाता है।

(कथानक - 10)
"बीती हुई यादें"

फरवरी सन् 1946 का जिक्र है। श्री सद्गुरूदेव महाराज तरन तारन में निवास कर रहे थे। वहीं एक बगीचे में टैंट लगवा दिया गया था। वहाँ सत्संग का समय मुकर्रर (निश्चित) था। एक दिन एक सरदार साहब, जो कम्युनिस्ट विचार-धारा के थे, वहाँ आये और उन्होंने श्री महाराज से कहा--

"महाराज जी, आपने भी एक पोथा बना दिया है। यह चीजें भी आगे के लिए मिलाप की जगह खोट ही पैदा करेंगी।"

श्री महाराज ने कहा---

"प्रेमी, सत्पुरूषों के वचन एकता पैदा करने वाले होते है। अपनी-अपनी खुदगर्जियाँ ही आपस में फूट डाला करती हैं। फूट डालने का काम आपस की खुदगर्जियाँ ही करती हैं। गुरू गोबिन्द सिंह ने सबको इकट्ठा किया। ऊँच-नीच का भेद खत्म किया। हिन्दू धर्म की हिफाजत के वास्ते सिपाही बनायें, लेकिन जब बाड़ ही खेत को खाने लगे तब क्या हो सकता है?

प्रेमी ने कहा-

"महाराज जी, इतना बड़ा तरन तारन में तालाब बना दिया, मुक्ति के लिए। अगर इसमें खेती की जाती तो अनाज पैदा होता। कई लोगों का गुजारा हो जाता, दस परिवार चल पड़ते। जितने राग-कीर्तन गाये जाते हैं उतनी ज्यादा बदरीतियाँ हो रही हैं। गरीबों के रूपये से अमीर ऐश कर रहे हैं। इस तरह क्या बोल कर लोगों का सुधार होगा ।

श्री सद्गुरूदेव महाराज जी ने कहा-

तुम्हारा विचार किसी हद तक ठीक है। हर एक के साथ एक जैसा सलूक हो, रोटी-कपड़ा, रहन-सहन, सबका बन्दोबस्त हो । अमीरो को लूटकर गरीबों को तक्सीम कर देने से यह नहीं हो सकता बल्कि इख्लाकी तालीम देने से होगा। जब तक जनता सही विचारवान नहीं होती तब तक किसी बात को सही नहीं समझती। सिर्फ रोटी, कपड़ा, मकान सब को मिल जाने से मसला हल नहीं हो सकता। न ही एक जैसे सब हो सकते हैं। जमींदार-साधारण आदमी एक जैसे नहीं हो सकते। यह हो सकता है कि सबका विचार दुःख भरा सुना जावे, उनकी सेवा का बन्दोबस्त अच्छे से अच्छा किया जावे। बताओं तुम्हारी कितनी आमदनी है ? महीने के बाद उसको कितने आदमियों में तुम बाँटते हो? कितनों को तुमने अपने जैसा बनाया? खाली खुश्क स्कीमें (प्रोग्राम) ही आगे पेश करते जाओगे तो उससे काम नहीं होगा।"

जब वह प्रेमी खामोश हो गया तो श्री महाराज ने फरमाया---

"प्रेमी, अपना अमली जीवन बनाओ फिर कोई तुम्हारी बात सुनेगा ।"

(कथानक 11)
"बीती हुई यादें"

श्री सदुरूदेव महाराज चौमासे में केलाघाट पर एक तम्बू में निवास कर रहे थे। राजपुर रोड देहरादून में जाखन गाँव में गोरखों का एक पुराना मन्दिर है। उन दिनों उस मन्दिर के बेचे जाने की बात चल रही थी। पता चला कि उस मन्दिर का महन्त उस मन्दिर का स्वामित्व बेचकर चला गया है। जिस आदमी ने वह मन्दिर खरीदा था अब उसने उस मन्दिर का कब्जा ले लिया है। इस प्रकार की जितनी भी सम्पत्ति थी वह पुराने महन्त के नाम से हटकर नये महन्त के नाम में हस्तान्तरित हो गई। उसकी बाकायदा रजिस्ट्री हो गई। इसके बाद की घटना इस प्रकार है-

मैं एक दिन श्री महाराज के पास बैठा हुआ था। दोपहर का वक्त था। मैंने श्री महाराज जी से पूछा ---

"महाराज जी,यह जगाधरी आश्रम किसके नाम है?"

श्री महाराज जी बोले---

"प्रेमी 'इनको' तो पता नहीं किसके नाम है। बाबू अमोलक राम आयेंगे उनसे पूछना।

मैंने श्री महाराज जी को बताया--

"महाराज,इसमें कुछ रहस्य है इस वास्ते मैं पूछ रहा हूँ।"

दो-तीन दिन बाद बाबू अमोलक राम जी आये और श्री महाराज जी ने उनसे इस बारे में पूछ-ताछ की।

उन्होंने श्री महाराज जी को बताया कि जगाधरी आश्रम बहतमाम (Under the management of) श्री महाराज गुरूदेव के है। मैंने श्री

महाराज जी को समझाया---

"महाराज जी,समता योग आश्रम तो जगह का नाम है लेकिन श्री महाराज मंगतराम जी का नाम इसमें क्यों है? श्री महाराज जी तो गुणातीत पुरूष हैं वे जायदाद के लिए अदालतों के चक्कर क्यों काटेंगे? इसलिए श्री महाराज जी आपके नाम में तो कोई भी प्रोपर्टी नहीं रहनी चाहिए आप को तो कोर्ट-कचहरी के चक्कर काटने पड़ सकते हैं।"
श्री महाराज जी ने पूछा-

"तो अब इसका क्या होना चाहिए?"

मैंने जवाब दिया---

"महाराज, मुझे तो इस बारे में कुछ पता नहीं है। अगर आप आज्ञा दें तो मैं वकीलों की सलाह लेकर आपको बता सकता हूँ।"

अगले दिन मैं वकीलों के पास गया। जाकर मैंने उसे सब किस्सा सुनाया। इस तरह हमारे सत्पुरूष महात्मा गुणातीत पुरूष हैं। उनके पास उनकी संगत है। संगत के इकट्ठा होने और उनकी सद्बोध प्राप्ति के वास्ते, सम्मेलन के वास्ते एक स्थान उन्होंने मुकर्रर (निश्चित) किया है। वह स्थान इस प्रकार लिया हुआ है। वकीलों ने बताया कि जितने भी तुम्हारी संगत के मैम्बर हैं उन मेम्बरान की एक सोसायटी बनाओ। जब तुम सोसायटी बनाओगे तो उनकी संवैधानिक (legal) मान्यता हो जाएगी जो सोसायटी की Governing Body हैं। उसको आप Board of Trustee कह सकते हैं। उन्हीं के नाम यह प्रोपर्टी लिख दी जाएगी। श्री महाराज जी का इसमें कोई दखल या नाम नहीं होगा।

मैंने यह सब बातें जाकर श्री महाराज जी को समझाई कि Society Registration Act के तहत Society Registered हो जाएगी और उस

Society के तहत उसकी जो Governing Body होगी या Board of Trustee होगें उनके नाम यह प्रोपर्टी बतौर मैनेजर हस्तान्तरित हो जाएगी। मगर यह प्रोपर्टी आप के नाम में नहीं होगी। श्री महाराज जी से मेरी इतनी बात हुई इसके बाद श्री महाराज जी ने तीन आज्ञाएं जो आगे दी जा रही हैं लिखी और वे आज्ञाएं जगाधरी में मुझे पढ़कर सुनाई। उसमें उन्होंने अमोलक राम और भगत बनारसी दास को ताजिन्दगी इसके मेम्बर मुकर्रर किए। मैंने ये आज्ञाएं सुनकर श्री महाराज जी से पूछा-

"महाराज आपने इनको जो ताजिन्दगी मेम्बर बनाया है। क्या आप समझते हैं कि ये ताजिन्दगी मेम्बर कभी गड़बड़ नहीं कर सकते? अगर कल ये गड़बड़ हो गये तो फिर भी आपकी लिखत के मुताबिक ये ताजिन्दगी मेम्बर रहेंगे। और ये खुराफात करते रहेगें।"

श्री महाराज जी ने कहा---

"हाँ तुम ठीक कहते हो, कुछ गड़बड़ हो सकती है।"

तब उन्होंने लिखा---

"इन तमाम Trustee मेम्बरान में से जो भी समता का पाबन्द नहीं रहेगा, उसकी तबदीली कर दी जावेगी।"

यानि लाइफ मैम्बरान को भी उन्होंने बाकी मैम्बरों के साथ ही इकट्ठा कर दिया। महाराज की तीन आज्ञाएँ इस प्रकार हैं।

तमाम संगत समतावाद को वाजय (सूचित) होवे कि आइन्दा को समता योग आश्रम, जगाधरी व समता योग आश्रम, राजपुर (देहरादून) या और कोई नया आश्रम अगर कायम होवे जो सेंटर के मातहत (under) हो, उन सबका इन्तजाम एक ट्रस्ट के जरिये ही होगा। ट्रस्ट के तमाम मेम्बर अपने-अपने फर्ज को समझते हुए आश्रमों के प्रबन्ध में पूरा-पूरा यत्न करें।

कुछ समय तक प्रेमियों के श्रद्धा भाव का अमली रूप आश्रमों के प्रबन् के मुताल्लिक देखा जाएगा, तब ट्रस्ट अदालत में बाकायदा रजिस्टर करवा दिया जावेगा। लिहाजा आज से तमाम ट्रस्टी मेम्बरान अपनी जिम्मेदारी संभाल लेवें और अमली सेवा का सबूत देव ट्रस्ट के मेम्बरों के नाम मुन्दर्जाजेल (निम्नलिखित) हैं--

1. अमोलक राम।
2. बनारसी दास।
3. डॉ0 भगत राम, देहली।
4.. दीनानाथ मैंगी, जम्मू कश्मीर।
5. हकीम नत्थूराम, जगाधरी
6. फकीर चन्द, अम्बाला
7. ओम कपूर, देहरादून

इन प्रेमियों मेंसे अमोलक राम व बनारसी दास ताजिन्दगी ट्रस्ट के मेम्बर समझने चाहिए। बाकि प्रेमी भी तमाम जिन्दगी अगर इस सेवा में समर्पण करने का निश्चय कर लेवे और सही सेवा का सबूत देवें तो मुस्तकिल (स्थायी) मेम्बर ही होगे। नहीं तो हालात के मुताबिक अगर कोई तबदीली करनी हुई तो कर दी जावेगी। तमाम ट्रस्टी मेम्बरान में से अगर कोई समता के असूलों का पाबन्द न रहेगा तो उसकी तबदीली कर दी जाएगी। तमाम ट्रस्टी मेम्बरान अपनी जिम्मेदारी को अनुभव करके इस सेवा के महाकारज को सरअंजाम देवें और तमाम संगत इन प्रेमियों के साथ पूरा-पूरा सहयोग देवें।

यही सद्गुरूदेव आज्ञा सबके वास्ते है। ईश्वर आज्ञाकारी भावना देवें।

हस्ताक्षर (मंगतराम) जगाधरी
25.9.53

प्रबन्धक मण्डल संगत समतावाद के नियम:--

1) जिले के तमाम सत्संगों से दो या तीन मेम्बर प्रबन्धक मण्डल में शामिल होगें।

2) आश्रम ट्रस्ट के मेम्बरों की तबदीली भी श्री सद्गुरू महाराज की अदम मौजूदगी (अनुपस्थिति) में प्रबन्धक मण्डल के जिम्मे ही होगी।

3) मण्डल में सही समता की तालीम को जागृत करने की खातिर सेवादार भिक्षु मुकर्रर करने चाहिए।

4) तमाम प्रकार की परमार्थिक उन्नति के मुतल्लिक प्रोग्राम सोचना मण्डल का ही काम

5) मण्डल की कायमी जिस वक्त संगत चाहे कर लेवे। मगर बेहतर होगा इसी साल मुकामी मंडल कायम कर लेवे। और अगले साल सम्मेलन पर सेन्ट्रल मंडल कायम कर लेवें।

6) मंडल के मेम्बर ऐसे होने चाहिए जो समता के सही असूलों पर पूर्ण निश्चय से कारबंद होवें

हस्ताक्षर (मंगतराम) जगाधरी।

25.9.53

प्रबन्धक में कार्यकर्ता प्रेमियों के इस तरीके से स्थान कायम करने चाहिए---

1) अति मुख सेवादार यानि सर्व समर्पण भाव रखने वाला।

2) मुख सेवादार यानि समर्पण भाव रखने वाला।

3) भावुक सेवादार यानि भावना सहित सेवा करने वाला।

4) सेवादार यानि निमित्त मात्र समय के मुताबिक सेवा करने वाला।

चूँकि परमार्थ मार्ग में सेवादारों का ही प्रबन्धक होना कल्याणकारी होता है इस वास्ते ऊपर के नामों के मुताबिक ही प्रधान या सेक्रेटरी के नाम होने चाहिए। अक्सर परमार्थ में प्रधानता की खातिर बड़ी-बड़ी धड़ेबंदिया हो जाया करती हैं इस वास्ते प्रधान लफ्ज का त्याग करके सेवादारों का लफ्ज निश्चित कर देना चाहिए।

अतिमुख सेवादार भाव वाला प्रेमी न मिले तो मुख सेवादार के भाव वाले को मुखी कायम कर लेना चाहिए। और अगर मुख सेवादार की भावना रखने वाला भी न मिले तो भावुक सेवादार को ही मुखी कायम कर लेना चाहिए।

अपने प्रबन्ध कार्यो को इस रीति पूर्ण करने का यत्न करना चाहिए। जिस-जिय जगह खास मजबूरी से कमेटी बनानी होवे, तो ऐसे ही सेवादारों का लक्षण विचार करके मुखी कायम कर लेना चाहिए। अगर बगैर रजिस्टर्ड संगत का काम चल सके तो चलाना चाहिए। नहीं तो हस्ब जरूरत संगत को रजिस्टर्ड करवा लेवें।

सत्यवादी, त्यागी, परोपकारी तथा मुकम्मल पाँच असूलों के सहित सेवादारों का स्वरूप तमाम संगत और तमाम संसार के वास्ते जीवन रूप है। ऐसा निश्चय होना चाहिए।

हस्ताक्षर (मंगतराम) जगाधरी।
25.9.53

(कथानक - 12)
"बीती हुई यादें"

वर्ष 1953 ई. में सम्मेलन जगाधरी आश्रम का जिक्र है। प्रेमी भाई डॉ० मदन मोहन जी, प्रेमी श्रीराम लाल जी नारंग और मैं (ओम कपूर) लगभग 10 दिन पहले ही जगाधरी आश्रम में पहुँच गये थे। श्री सत्गुरूदेव जी महाराज ने केला घाट- देहरादून में मुझ से सम्पत्ति एवं प्रबन्धक मण्डल सम्बन्धित बातचीत के बाद, तीन सत् आज्ञाएँ संगत की भावी व्यवस्था सम्बन्धी लिखित रूप में बाबू अमोलक राम जी को दे दी थी। मेरे जगाधरी पहुँचने पर श्री महाराज जी ने वह आज्ञाएँ मंगवा ली। प्रेमी भाई बनारसी दास जी से पढ़कर सुनाने को श्री महाराज जी ने आज्ञा फरमाई। उन आज्ञाओं को सुनकर श्री महाराज जी से मेरी इस सम्बन्ध में जो टिप्पणी हुई उन को श्री महाराज जी ने उन आज्ञाओं में शामिल कर लिया।

तदुपरान्त सुबह से शाम तक का आश्रम का दैनिक जीवन क्रम हस्ब मामूल (as usual) चलता रहा। मेरे मन में एक उलझन खड़ी हो गई और मैंने श्री महाराज जी से उस बारे में राय जाननी चाही। घटना इस प्रकार है---

“ श्री महाराज जी का यह नियम था कि रात को जब सभी प्रेमी विदा हो जाते थे, केवल एक या आधा घण्टा ही वे लेटा करते थे। उसके बाद एक गड़वी (लोटा) और एक लकड़ी (डण्डा) लेकर 'छछरोली रोड' पर उत्तर की दिशा में काफी दूर लगभग 2 या 3 मील, चले जाते थे, वहाँ पर किसी खाली खेत (बिना फसल के) में पत्थर आदि पर एकान्त स्थान में समाधि अवस्था में लीन हो जाते थे। जब पौ फटने का समय हो जाता था तब वहाँ से आश्रम की ओर वापिस लौटते थे।

मैं भी अपने मित्रों सहित, उसी दिशा में सड़क पर काफी आगे चला जाता था, परन्तु हम सब श्री महाराज जी के समाधि स्थान से कुछ पहले (एक या डेढ़ फर्लांग) ही रूक कर उनकी प्रतीक्षा करते थे ताकि श्री महाराज के साथ अधिकतम् समय वापसी में प्राप्त कर उसका लाभ उठा सकें।

एक दिन वापसी के समय मैंने श्री महाराज जी से प्रार्थना की--

"महाराज जी, दो तीन दिन पहले आपने सत् आज्ञाएँ लिखित, दिखलाई थी, जिन में बोर्ड आफ ट्रस्टी में मेरा नाम भी शामिल था, (बोर्ड आफ ट्रस्टी के सदस्य के रूप में) मुझे इसमें उलझन हो रही है।" श्री महाराज जी ने कहा---

"प्रेमी! बताओ क्या उलझन है?"

मैंने प्रार्थना की, "मैं एक साधारण सा जीव हूँ और संसार के दकीक (कठिन) मार्ग में बहुत कमजोर व असमर्थ हूँ। मैं आप की ख़िदमत (सेवा) में केवल मात्र आप से अध्यात्म सम्बन्धी विचार व मार्ग दर्शन प्राप्त करने के लिए आता हूँ। कोई जिम्मेदारी का काम उठाने में अपने को कमजोर और ना-अहल (अयोग्य) समझता हूँ। बोर्ड आफ ट्रस्टी के सदस्य के रूप में मैं कैसे कार्य सम्भाल सकूंगा जबकि मुझे कोई तजुर्बा (अनुभव) इस बारे में नहीं है। साथ ही संगत में और बड़े-बड़े वयोवृद्ध और जहां-दीदा (तजुर्बेकार) प्रेमी भी हैं, यह काम आप कृपया उनके सुपुर्द करिये तो ज्यादा बेहतर होगा।

श्री महाराज जी ने मेरी बात बड़े ध्यान से सुनी, पर चुप कर गये, कुछ फरमाया नहीं।

दूसरे दिन फिर, जब मैं श्री महाराज जी के साथ सुबह वापिस आ रहा था, मैंने यही बात फिर दुहराई। श्री महाराज जी इस पर भी कुछ न

बोले, रास्ते भर सन्नाटा रहा, पर मेरे दिमाग में यह बात घूमती रही। तीसरे दिन भी यही प्रक्रिया जारी थी। श्री महाराज जी ने कोई उत्तर न दिया। हाँ इतनी बढोतरी हुई, श्री महाराज जी ने एक वाक्य कहा- "तुम हुज्जत बाजी करते हो !"

इस पर मैंने कहा---

"महाराज जी, मेरे में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपके साथ इस प्रकार का व्यवहार करूँ।"

एक बात जो इस संदर्भ में बतानी आवश्यक है, वह यह है कि जब उक्त बात मैं श्री महाराज जी से, किसी अन्य प्रेमी को सदस्य बनाने हेतु, कर रहा था, मेरे दिमाग में एक प्रेमी जी का ध्यान बार बार आ रहा था, जो श्री महाराज के पास सेवा में रहते थे, आते-जाते समय साष्टांग प्रणाम करते थे, जाते हुए उल्टे पांव वापिस जाते थे, महाराज जी की ओर पीठ नहीं करते थे, बरामदे के बाहर जा कर मुँह का रूख बदल कर जूते पहन कर चल देते थे। जब संगत इकट्ठी होती थी उस समय जो भी प्रसाद वहाँ आता था, वही प्रेमी जी वहाँ उपस्थित संगत प्रेमियों में बांट देते थे । इसके साथ ही साथ वह बड़े शिष्टाचारी मधुर भाषी प्रेमी थे, इस कारण मैं अपने दिल में उन प्रेमी जी का बड़ा आदर सम्मान करता था। श्री महाराज जी ने उन का नाम ट्रस्टी के रूप में नहीं लिखा था, मैं बार बार मन में सोचता था कि वह प्रेमी हर प्रकार से योग्य और परम श्रद्धावान हैं।

चौथे दिन मैंने फिर जब वही पुराना राग, ट्रस्ट की सदस्यता सम्बन्धी अलापा , तो श्री महाराज जी ने बड़ी आहिस्ता से कहा "तुम गुरु की आज्ञा को नहीं मानते।"

मैंने फौरन कहा--

"महाराज जी मैं ऐसी गुस्ताखी (घृष्टता) नहीं कर सकता। जैसी आप की आज्ञा होगी, उस का अक्षरशः पालन किया जावेगा।"

तब महाराज जी ने कहा---

"तुम्हारा मतलब है कि, क्या फल तोड़ने वालों को आश्रम का ट्रस्टी बना दें? ऐसा नहीं होगा।"

मैं यह सुनकर अवाक रह गया, कि महाराज जी ने यह क्या कहा? कुछ देर तक मैं असमंजस में रहा फिर गुरू आज्ञा समझ कर चुप हो गया।
श्री महाराज जी ने आगे कहा---

"तुम्हें पता नहीं, समय आने पर तुम्हें अपने आप पता चल जावेगा कि - तुम्हारा नाम क्यों (सदस्य के रूप में) रखा गया है। श्री गुरूदेव जी का यह वाक्य सुन कर और प्रभु का विधान सर्वोपरि मानकर मैं बिल्कुल खामोश हो गया।

आने वाले समय में, मैंने प्रत्यक्ष देखा कि बोर्ड आफ ट्रस्टीज मे यदि मेरा नाम बतौर सदस्य के न होता, तो आगे चलकर संगत के इतिहास मे बहुत बड़ा पाखण्ड संगत जीवन में अनजाने में ही होने जा रहा था जो मेरी उपस्थिति से (श्री सत्गुयदेव जी की आज्ञा एवं परम पिता परमेश्वर की कृपा के फलस्वरूप) टल गया, अन्यथा आज स्थिति कुछ और ही होती असलियत से दूर और भावनाओं में बह जाने वाली बन जाती। फिर उसकी दुरूस्ती होना बहुत मुश्किल हो जाता।

यह घटना माह अक्टूबर, नवम्बर 1953 की है, बाद में 4 फरवरी 1954 को मुकाम तरन तारन - अमृतसर में श्री महाराज जी ज्योति जोत समा गये।

(कथानक -13)
"बीती हुई यादें"

वार्षिक सम्मेलन जगाधरी 1953 ई0 के बाद मैं देहरादून वापिस आ गया और ग्रन्थ श्री समता प्रकाश के हिन्दी रूपान्तर (Volume) को लेकर लखनऊ चला गया। सब काम पूर्ण हो चुका था, छपाई (Printing) की तैयारी हो रही थी, अवध प्रिंटिंग वर्कस, लाटूश रोड, लखनऊ में यह प्रबन्ध किया गया था। मशीन प्रूफ निकालने की तैयारी हो रही थी। सारी टाइप (वर्ण, अंक आदि) फाण्डरी से नई ढलवाई गई थी। एक पृष्ठ का मशीन प्रूफ जैसे ही तैयार हुआ, मैं उसे श्री महाराज जी को दिखलाने के लिए अम्बाला शहर पहुँचा। उन दिनों श्री महाराज जी जगाधरी से चलकर अम्बाला शहर के श्मशान घाट के नजदीक एक बगीचे में (जो उसी बाउण्ड्री से सटा हुआ ही था) टैंट में निवास कर रहे थे।

रात को लखनऊ से चल कर रेल प्रातः काल जल्दी ही अम्बाला शहर पहुँच जाती थी। जाड़ा पड़ रहा था, मैं तुरन्त ही स्टेशन से टैंट पर पहुँचा । श्री महाराज जी वहाँ टैंट में नहीं थे, बाहर कहीं समाधि में लीन थे। श्री भगत जी वहाँ टैंट में मौजूद थे।

श्री भगत जी से गले मिल कर मैं बहुत खुश हुआ और ग्रन्थ का वह पृष्ठ (मशीन प्रूफ) दिखाया। कहने लगे, “बहुत अच्छा छपा हुआ है,” बहुत खुश हुए।

थोड़ी देर में ही श्री महाराज जी बाहर से वापिस आये। श्री महाराज जी मुझ से पूछा, 'ओम, कैसे आए? "

मैंने उत्तर दिया---

“महाराज जी आपको मशीन प्रूफ दिखाने लाया हूँ।”

उस पृष्ठ को देखकर श्री महाराज जी बहुत खुश हुए और उन्होंने फरमाया-

“ओम, तुम्हारा यह कार्य देव कार्य है, इस काम को करते हुए, तुम उस प्रभु के प्यारे बन जाओगे।"

इसके बाद श्री महाराज जी अपने आसन पर विराजमान हुए और मुझ से सवाल किया ---

“तुम ने बनारसी से पूछा, उस के मन की क्या हालत है,क्या वह उस बताये प्रोग्राम के मुताबिक (अनुसार) चल रहा है? जरा पूछ कर देखो।"

मैंने श्री भगत जी से अलग एकान्त में बैठकर श्री महाराज जी की इच्छा को उन के समक्ष रखा।

श्री भगत जी बोले---

"मैं आप से कुछ नहीं छिपाता, मैं पूरी कोशिश कर रहा हूँ कि उस प्रोग्राम के मुताबिक चलूँ, पर मेरा मन काबू में नहीं रहता। वासनाओं का धुआँ मुझे चारों ओर से घेरे हुए है। मैं बड़ी जद्दो जहद (कठिन प्रयास) कर रहा हूँ, आप जैसे सुहृद की सद्भावना मेरे साथ है, श्री महाराज जी का साया मेरे ऊपर है, मैं अवश्य कामयाब होने की आशा रखता हूँ।"

मैंने श्री भगत जी से यह सब सुनकर श्री महाराज जी को यह सारा वृत्तान्त हू-ब-हू सूना दिया। इत्तिफाक से (संयोग वश) श्री भगत जी भी वहाँ आकर बैठ गये।

श्री सत्गुरू महाराज जी ने मुझ से मुखातिब होकर (सम्बोधित करते हुए) इस प्रकार कहा---

"जब तक तू अपने कल्याण के लिए, सोचेगा, समझेगा, मानेगा और चलेगा नहीं, तब तक साक्षात् बह्मा भी आजावें, तेरा कुछ नहीं बना सकते।"

"यह शरीर अपूर्ण है, इस के भोग अपूर्ण हैं। यह संसार अपूर्ण है, इस अपूर्ण शरीर और अपूर्ण संसार में पूर्णताई की तलाश करना महज मूर्खता है।"

“यह बात तू आज समझ ले, दस साल बाद समझ लेना या चार जन्म बाद समझ लेना, आखिर तुझ को समझना यही पड़ेगा।"

“क्यों अपने सफर को लम्बा करता है? उठ ! खड़ा हो जा और अपने कल्याण के मार्ग में बढ़ चल ।”

यह वचन फौरन अपनी नोट बुक में नोट किए। वहाँ से देहरादून होते हुए, सीधा लखनऊ चला गया। वहाँ ग्रन्थ की छपवाई के काम में लग गया।

जब महाराज जी तरन तारन पहुँचे, तो श्री भगत जी ने श्री महाराज जी से यह कह दिया---

“मेरे से उस प्रोग्राम के माफिक नहीं चला जाता। मैं उस प्रोग्राम में चलने में बहुत कमजोर हूँ।”

इस पर श्री महाराज जी ने कहा--

“अच्छा प्रेमी, तू उस प्रोग्राम पर नहीं चल सकता, तो तुझे जल्दी छुट्टी मिल जावेगी।”

इस घटना के लगभग एक हफ्ते बाद ही श्री महाराज जी का शरीर शान्त हो गया, और श्री भगत जी का श्री महाराज की आज्ञानुसार प्रोग्राम भी खत्म हो गया, वह बन्धन भी ढीला हो गया।

(कथानक - 14)
"बीती हुई यादें"

पास यह बड़ी पुरानी बात है। उस वक्त मैं सद्गुरू देव श्री महाराज मंगत राम जी के पास नहीं आया था। हमारे दादाजी को फकीरों के पास जाना और उनकी सोहबत करने का बड़ शौक था। जब कभी मौका मिलता तो मैं भी उनके साथ जाता था।

राजपुर कस्बे में मन्नू शाह नाम के एक फकीर रहते थे। उनकी कब्र यहाँ देहरादून में इनामुल्ला बिल्डिंग, गांधी रोड के पीछे एक कम्पाउण्ड में हुई है। यहीं उनके शरीर को दफनाया गया था। यह सन् 1945 का जिक्र है। जब हमारी कपड़े की दुकान थी मन्नूशाह के साथ बहुत सारे लोग इसलिए इकट्ठे हो जाते थे क्योंकि जहाँ मन्नूशाह खाना खाते थे वहाँ उन लोगों को भी खाना मिल जाता था।

उनकी शक्ल सूरत महात्मा या फकीर जैसी नहीं थी बल्कि वह एक आम इंसान की तरह से रहते थे। उनकी लम्बी दाढी थी और सिर पर कोई बाल नहीं थे। कोई विशेष वेश-भूषा नहीं थी। वे सलवार-कमीज और कमीज के ऊपर एक लम्बा कोट पहनते थे जैसे कि पुराने लोग पहना करते थे। राजपुर कस्बे में उनकी किरयाने की दुकान थी जिसमें सभी तरह का सामान बिकता था। पहाड़ी लोग यहीं से समान खरीदते थे।

मन्नूशाह जब दुकान का सामान खरीदने आढ़त बाजार देहरादून आते थे तो थोक दुकानदार से कहते थे कि मुझे ठीक भाव से सामान देना क्योंकि मैं कोई नहीं करूगाँ। जिस भाव से तुम दूसरे दुकानदारों को बेचते हो उसी भाव से मुझे भी देना। इस तरह वह वाजिब दाम पर अपनी दुकान में भी बेचते थे।

मन्नूशाह का अपना कोई परिवार नहीं था। बस... माई के बच्चों के साथ वह रहते थे। कभी-कभी वह मस्ती में घूमते हुए हमारी दुकान पर आ पहुँचते थे। मैंने उनसे अर्ज की---

"मन्नूशाह वह 'राज-ए-मार्फत' (आध्यात्मिक ज्ञान का रहस्य) जरा हमें भी समझाओ न। "

वह तुरन्त बोले----

“अरे क्या 'राज-ए-मार्फत'। नुक्ते का ही फेर है। 'नुक्ते में खुदा! नुक्ते में जुदा'।"

'उर्दू लिपि में 'जीम' और 'खे' दो हरफ हैं। खुदा 'खे' से बनता है और 'जीम' से 'जुदा' बनता हैं। उन दोनों हरफों जीम और खे की एक जैसी शक्ल है। एक में बिन्दु ऊपर लगता है और एक में नीचे लगता है। जिसमें (जीम में) नुक्ता नीचे लगता है वह 'जुदा होता है और जिसमें (खे में) ऊपर लगता है वह 'खुदा' है।

मैंने कहा यह बात तो समझ में आ गई लेकिन आप वह नुक्ता बताओ जो 'खुदा' भी बना देता है और जुदा भी बना देता है। उन्होंने बात टालने की कोशिश की लेकिन मैं अपनी जिद पर अड़ा रहा। फिर उन्होंने मेरी तरफ घूर कर देखा। मैंने हाथ जोड़ दिए।

उन्होंने वही राज मुझे बताया जो श्री गुरूदेव के बाद में मिलने पर मुझे बताया। उन्होंने अपने मुँह मे उच्चारण मेरे कान से आकर किया। मैने वह राज अच्छी तरह से सुना। लेकिन उन्होंने मुझे उसको अभ्यास करने का तरीका नहीं बताया। इसके बाद वहाँ से वह चल दिए।

सन् 1947 में चारों तरफ मार-काट मची हुई थी। उन्होंने एक दिन धोबी से कहा- मुझे एक जोड़ा कपड़े ला दे, आज हमें अपने यार से मिलने

जाना है। देहरादून शहर आते हुए बाडीगार्ड के पास एक वहशी गोरखे ने उनकी छाती में छुरा घोंप दिया। वह वहीं ढेर हो गये।

उन फकीर के अन्दर जो सबसे बड़ी बात देखी गई वह यह थी कि वह अपनी मस्ती में रहते थे। यह खुदा और 'जुदा' की बात सबसे पहले मैंने उसके मुँह से सुनी थी। उसकी बाद गुरू महाराज से जब वह बात बाद में सुनी तो उस साधना को मैं करने लगा हूँ।

श्री गुरूदेव महाराज जी ने इस आख्यान की पुष्टी की, जब उनके समक्ष ये वार्ता पेश की।

(कथानक -15)
"बीती हुई यादें"

एक बार मैं और डॉक्टर मदन मोहन रात के समय महाराज जी के पास पहुँचे। रात को अक्सर बहुत थोड़े लोग उनके पास रह जाते थे और बाकी सब लोग अपने खाने-पीने, आराम करने और सोने के लिए चले जाया करते थे।

दिन भर बैठे-बैठे महाराज जी जब शाम को टाँगे लम्बी करके बैठते थे, दिन भर बैठे-बैठे कहीं श्री महाराज जी की टाँगे अकड़ न गई हो, इसलिए लोग उनके पैर दबाने लगते थे। उन लोगों की इस हरकत को देखकर श्री महाराज जी अक्सर उनसे कहा करते थे---

“प्रेमी इन लकड़ियों को दबाने से तुम्हारा कुछ नहीं बनेगा, ये जो बात कहते हैं उस बात को अपने जीवन में घटाओ तब तुम्हारा कल्याण होगा।"

यानी इस शरीर की किसी प्रकार की पूजा को वह स्वीकार नहीं करते थे, बल्कि वह कहते थे कि तुम इनके वचनों को अपने जीवन में लाओ तब तुम्हारा कल्याण होगा।

एक सवाल श्री महाराज जी ने मदन मोहन से पूछा--- “प्रेमी मदन मोहन, तुमने 'इनमें' क्या देखा है?” ('इन' शब्द का प्रयोग वे अपने लिए किया करते थे, अपने व्यक्तित्व के लिए इस्तेमाल किया करते थे)

डॉक्टर मदन मोहन सहज स्वभाव के थे। उनके अन्दर किसी प्रकार की बनावट नहीं थी। क्योंकि उनका हृदय महाराज जी के प्रति अत्यन्त सरल और श्रद्धायुक्त था। इसलिए महाराज जी के प्रति उनकी जो श्रद्धा थी उसके अनुकूल उन्होंने अपने दिल की बात उनके सामने खोल कर रख दी।

डॉक्टर मदन मोहन ने कहा---

“महाराज, जी मैंने आपके अन्दर ईश्वर देखा है।”

फकीर इतनी बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे। वह उन पर बरस पड़े-

“ईश्वर क्या होता है?" उन्होंने मदन मोहन से सवाल किया।

अब मदन मोहन क्या जबाव दें। उनसे कोई जवाब देते नहीं बना। जब लगभग आधा मिनट तक खामोशी रही और डॉक्टर मदन मोहन से कोई जवाब नहीं बन पड़ा तो मैं अपने मित्र को इस प्रकार श्री महाराज ही के सामने असहाय न देख सका।

मैंने कहा---

“श्री महाराज, मैं बताता हूँ, इन्होंने जो बात इस प्रकार की है उसका क्या मतलब है।"

श्री महाराज के सवालों का निशाना अब मैं बना। उन्होंने जोर से मुझे
झकझोरा-

“ओ तू छोड़ इसकी बात। तू अपनी बता, तूने 'इनमें' क्या देखा ?”
यह बात अब मेरे ऊपर आ पड़ी। वही हाल हुआ कि नमाजबख़्शवाने गये थे रोजे गले पड़ गये। मैं तो इस सवाल के लिए तैयार ही नहीं था कि श्री महाराज मुझसे भी पूछेंगे कि तूने क्या देखा। मैंने श्री महाराज जी से कहा---

“महाराज, जब आपने पूछ ही लिया है तो महाराज मैंने 'आप' में वह चीज देखी है जो मैंने कहीं नहीं देखी। मैंने बड़ी खोज की इस संसार में। जब-जब भी हम आपके पास आते है तब-तब हमारी ऐसी स्थिति होती है जैसे कि कोई जादू हमारे ऊपर हो गया हो। इम आपको किसी अवस्था

में भी छोड़ने के वास्ते तैयार नहीं रहते। जब तक हम आपसे नहीं मिलते, हम बेचैन रहते हैं और जब आपके पास पहुँच जाते हैं तब जाकर चैन मिलता है।"

श्री महाराज जी बोले--

"प्रेमी तुम ठीक कहते हो। तुम नातसल्ली में खड़े हो । तुमको हर वक्त कई प्रकार की चाहना है। ख़्वाहिशात अन्दर वास करती हैं। जब तुम 'इनके' पास आते हो तब तुम 'इनकी' ओर खींचे चले आते हो। तुम ठीक कहते हो ।"

मैंने कहा---

"महाराज जी इसका भी यही भाव था। यह ईश्वर बता नहीं सके। ईश्वर का स्वरूप यही है जहाँ आकर एक प्रकार से परम शांत हो जाता है। उसके हृदय के सारे आन्दोलन समाप्त हो जाते हैं।

(कथानक - 16)
"बीती हुई यादें"

बादशाह जहाँगीर के जमाने की बात है। पंजाब में 'बुल्लेशाह' नाम के। बहुत पहुँचे हुए फकीर हुए एक । एक दिन एक आदमी ने आकर फकीर हैं। बुल्लेशाह से उसे अपना शिष्य बनाने की अर्ज की। पहले तो फकीर ने उस व्यक्ति की अर्ज़ को मज़ाक में टाल दिया कि वह क्यों इस चक्कर में पड़ना चाहता है। उसे तो उसी तरह जिन्दगी के ऐशो-आराम में अपना समय बिताना चाहिए जैसे दूसरे आम लोग अपना समय बिताते हैं। इस फकीराना जिन्दगी में तो बहुत दिक्कतें दरपेश आती हैं। लेकिन वह व्यक्ति नहीं माना और उसने फकीर बुल्लेशाह को उसे अपनी शरण में लेने के लिए राजी कर लिया।

फकीर बुल्लेशाह ने उस आदमी को एक गुरू वचन दिया कि "किसी का होके न रहिए।" यानी एक ईश्वर की जात के अलावा किसी का भी आसरा (भरोसा) नहीं करना या किसी की भी गुलामी नही करनी है।

उस आदमी को फ़कीर के साथ रहते-रहते काफी दिन बीत गये। बादशाह जहाँगीर गर्मियों के दिनों में अपने वजीरों और अन्य दरबरियों के साथ कश्मीर प्रवास के लिए जाते हुए रास्ते में पंजाब के शालीमार बाग में बादशाह जहाँगीर और उसके साथियों ने कुछ देर आराम करने के लिए अपना डेरा डाल दिया। स्थान का निरीक्षण करने तथा लश्कर के ठहरने के इन्तजाम का मुआयना करने की गरज से बादशाह के वजीर उस तालाब के पास पहुँचे जहाँ फकीर बुल्लेशाह और उनका शिष्य आराम से बैठकर रोटी खा रहे थे। फकीर बुल्लेशाह तालाब के एक किनारे पर ये और वह शिष्य तालाब के दूसरे किनारे पर बैठा हुआ था ।

रमज़ान के दिन थे। इस महीने में मुसलमान लोग रोज़ा रखते हैं और दिन के समय कुछ भी नहीं खाते-पीते हैं। बादशाह जहाँगीर के वजीर नेजब उस शिष्य को कुछ खाते हुए देखा तो उससे पूछा- “तू कौन है?"

वह शिष्य डर गया और उसने अपने आप को बचाने के लिए यह
कलमा पढ़ लिया---
“ला इलाहा इललल्लाह मुहम्मद रसूलल्लाह" ।

यह सुनकर वह वजीर बिगड़ कर बोला---

"तू" मुसलमान होकर रोज़ा नहीं रखता और इस तरह रमजान के महीने में खाता फिरता है। लगाओ इसको कोड़े और इसकी अक्ल दुरूस्त कर दो।"

आज्ञा पाकर वजीर के सिपाहियों ने उस शिष्य की रोटी तालाब में फेंक दी और उसकी बुरी तरह कोड़ो से पिटाई की और वह अधमरा सा होकर जमीन पर गिर पड़ा।

अब वह वजीर थोड़ा और आगे बढ़ा तो देखा कि साधारण पोशाक में एक इंसान बैठा आराम से रोटी खा रहा । उस वजीर ने गुस्से में भरकर उस फकीर को भी पूछा---

“कौन है तू? और यह क्या कर रहा है?"

फकीर बुल्लेशाह ने उस वजीर की बात का कोई जवाब नहीं दिया। बल्कि जोर से पागलों की तरह चीख मारी । वजीर ने सोचा कि वाकई यह कोई पागल है और उसे उसी हालत पर छोड़कर आगे बढ़ गया।

थोड़ी देर बाद वह शिष्य कराहता हुआ गिरता-पड़ता फकीर बुल्लेशाह के पास पहुँचा और अपना हाल उन्हें सुनाया कि किस तरह कलमा पढ़ने पर

उस वजीर ने उसका हाल बेहाल किया। फकीर बुल्लेशाह बोले---

“मैंने तुझे कहा था कि किसी का होकर नहीं रहना, तू ‘मुहम्मद’ का कलमा पढ़कर 'मुहम्मद' का होना चाहता था, तो तेरा यह हाल होना ही था।" तू मुहम्मद का बना तो तुझे यह सजा भी भुगतनी पड़ेगी। वरना तू मुहम्मद के कानून के माफिक अपनी जिन्दगी बिताया कर। "

उपरोक्त आख्यान श्री गुरूदेव जी को सम्मेलन 1951 के दौरान उनकी कुटिया में जब वह बैठे थे तब मैंने सुनाया था। श्री गुरूदेव ने सुनकर इसका अनुमोदन किया और कहा कि नजरिया बुल्लेशाह फ़कीर का है।

(कथानक - 17)
"बीती हुई यादें"

अक्टूबर सन् 1953 स्थान समता योगाश्रम जगाधरी (वार्षिक सम्मेलन से पूर्व) (महाराज की सेवा करने वालों में एक प्रेमी ऐसा भी था जो प्रेमी फल का प्रसाद लेकर महाराज जी के पास आते थे तो वह उसकी साज-संभाल करता था और सबको फल बाँटता था। महाराज जी ने उसकी मनोदशा को देखा होगा कि उसका फलों के प्रति कितना आकर्षण है क्योंकि वह अच्छे फल मनपसन्द के अपने लिए पहले ही अलग निकाल कर रख लेता होगा। यानि फलों को ताड़ने में वह माहिर होगा।)

“ओम, तुझे नहीं पता कि तेरा नाम इसमें क्यों रखा गया है। तुझे वक्त आने पर पता लगेगा कि तेरा नाम क्यों रखा गया है।" यह सुनकर में चुप हो गया। मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया था। इसके बाद महाराज जी का शरीर शांत होने के बाद जो हालात गुजरे हैं और किस प्रकार डटकर उनका मुकाबला किया गया उसका वर्णन इस प्रकार है-

फरवरी सन् 1954 में गुरू महाराज का शरीर शांत हो गया। हम सब लोग जगाधरी पहुँचे। जगाधरी पहुँच कर हमने देखा कि जिस कमरे में महाराज जी बैठा करते थे उस कमरे में उनका शरीर रखा हुआ था। उनके शरीर के ऊपर फूल मालाएँ और फूल चढ़ाए हुए थे। जब मैं वहाँ पहुँचा तो मैंने देखा कि कहीं गुरूदेव ने समाधि न ले रखी हो और इनके शरीर को हरकत में न देखकर इन लोगों ने इन्हें मृत न समझ लिया हो। बहुत से लोग पास बैठे रो रहे थे। पहले मैंने उनको शांत किया। फिर मैंने महाराज जी के शरीर का निरीक्षण किया। मैंने पाया कि वाकई महाराज जी का शरीर शांत हो चुका था क्योंकि उनकी आंखों में सफेदी आ गई थी और शरीर में किसी प्रकार का स्पन्दन नहीं था। यह देखकर मैं कमरे से बाहर आ गया। मैंने बाहर आकर कहा देखो, महाराज जी फूल तोड़कर डालना पसन्द नहीं करते

थे और तुमने फूल उनके शरीर पर डाल रखे हैं। उन प्रेमियों ने कहा-

"नहीं ओम जी, अब तो महाराज जी की बात नहीं हैं.... फूल तो अब पड़ेंगे ही पड़ेगे।"

यह सुनकर मैं आश्रम की सीमा पर चक्कर लगाता रहा। मैं सोचता रहा कि अब कैसे होगा। मैंने वहाँ देखा कि लोगों में जागृति नहीं थी। जागृति इस अर्थ में कि वे गुरू के रूप में समझें। वे लोग गुरू को शरीर के रूप में ही समझते थे। गुरू को ज्ञान के रूप में समझने की बात वहाँ पर नहीं थी। इसलिए अब ये लोग बहक न जाएँ, मैं इसी उधेड़-बुन में था।

इसके बाद बाहर से लोग आने शुरू हुए। सब लोग इकट्ठे हुए और अन्तिम संस्कार आश्रम के अन्दर ही कर दिया गया। संस्कार के बाद, शाम को कुछ लोग विदा हो गये। कुछ लोग वहीं रूके रहे।

सब लोग इकट्ठे हुए। भगत बनारसी दास और अन्य सब प्रेमी भी वहाँ इकट्ठे हुए। भगत जी ने खड़े होकर बोलना शुरू किया----

“महाराज जी रात मेरे पास आये थे और उन्होंने आदेश दिया है कि यह देश की दौलत है इसको हिफाजत के साथ सम्भाल कर रखना।”

यह बात चिता की तरफ इशारा करते हुए भगत जी ने कही। और वे बैठ गए। मैं सब प्रेमियों के चेहरों को देखता रहा। मुझे आश्चर्य हुआ कि अभी तो चिता ठंडी भी नहीं हुई और अभी से पाखण्ड शुरू होने लगा। कोई भी

आदमी टस से मस नहीं हुआ। ज़रा भी कोई बात कहने वाला नहीं हुआ। और इस प्रकार बैठे-बैठे मिनट हो गये।

गुरूदेव की कृपा हुई उनकी प्रेरणा ऐसी हुई कि उसने मुझे एक दम खड़ा कर दिया। मैंने सब प्रेमियों को सम्बोधित करते हुए कहा--

क्या आप सब लोग भगत जी की इस बात को सुनकर उस पर विचार नहीं कर रहे हो? भगत जी ने बड़ी सारगर्भित बात कही है। उन्होंने महाराज जी का आदेश हमको सुनाया कि यह देश की दौलत है इसकी

हिफाजत करना बनारसी ! अब हम लोगों को इस पर विचार करना है और भगत जी भी इस पर विचार करें कि वचन जो उन्होंने आज तक हम लोगो को बताएं हैं वो इस बात से मेल खाते हैं जो भगत जी कह रहे हैं। अगर मेल नहीं खाते हैं तो यह जो भगत जी ने बात कही है इसको कैसा समझा जाए?

मैं यह समझता हूँ कि भगत जी का महाराज जी के साथ बहुत लम्बे समय तक साथ रहा है। इतने लम्बे समय तक भगत जी रात-दिन महाराज जी के साथ परछाई की तरह रहते थे। भगत जी को जो आदेश आज आया है, यह आदेश भी उन्हें महाराज जी के प्यार के वशीभूत ही मिला है।

परन्तु अब हमें यह सोचना पड़ेगा कि अगर महाराज जी का कोई वाड्मय पीछे न होता, कोई हिदायत पीछे न होती तब तो भगत जी की यह बात ठीक थी मगर अगर हिदायत पीछे हैं तो फिर उस हिदायत की रोशनी में हमें इस बात का भी जायजा लेना पड़ेगा कि यह बात कितना वजन रखती है। मुझे महाराज जी का कथन याद है कि गुरूदेव पहले तोइस प्रकारकी बातों को पसन्द ही नहीं करते थे । सुनना, समझना भी नहीं चाहते थे। वे तो जन्म-दिन, मरण-दिन कोई भी मनाने के वास्ते किसी तरह से राजी नहीं थे। इसके अलावा समाधि बनवाने की बात उनके दिमाग में आने का तो सवाल ही नहीं उठता। **श्री समता प्रकाश ग्रन्थ** में भगत जी द्वारा कमलबद्ध वचन इस प्रकार है---

एक आतम का होए विश्वासी, चित पर-सेवा नित धारी ।
पोथी, पाखाण मढ़ी नहीं पूजें, सो समता ज्ञान विचारी ॥

आज हम समता ज्ञान के उस चौराहे पर आकर खड़े हो गये हैं कि हम समता-ज्ञान का करें या पोथी, पाखाण, मढ़ी को पूजें। उनकी किताब को पूजें या उनकी कोई मूर्ति बनवाऐं या उनकी मढ़ी (समाधि) बनाकर उसकी पूजा करें य उनके ज्ञान की पूजा करें।

सत्पुरूषों का शरीर तो पंच भौतिक होता है। जैसा हमारा है वैसा की उनका भी होता है। आज उनके पंच भूत भी समाप्त हो गये। उनकी वाणी बोलती है कि इस शरीर के अन्दर से जब पंच तत्व विलीन हो जाता है तो तब-

तत्वों में सब तत्व मिले तेरा रूप रंग मिट जाए।
यही कला शरीर की छिन छिन रूप बटाये ।।

इस वाणी के तहत यह शरीर तो पाँच भूतों का समाप्त हो गया। इसका तो कुछ भी नहीं रहा। अब महाराज जी का जो ज्ञान है, ज्ञान-चेष्टा है, उनकी जो विचार-धारा है वह आज भी खड़ी है। इसी प्रकार मैं समझता हूँ कि भगत जी ने जो बात आज कही है। बड़ी -सार गर्भित बात है परन्तु इस बात का उनकी तालीम से मेल नहीं खाता। महाराज जी के सिद्धान्त से इसका मेल नहीं खाता। हमको सिद्धान्त पर खड़ा होना चाहिए क्योंकि आगे आने वाली सारी पीढ़ी सिद्धान्त को पूजेगी। वो भगत जी की जज्बाती बात को नहीं पूजेगी।

हमें भगत जी की बात का आदर करना चाहिए और इस बात के आगे सिर झुकाना चाहिए परन्तु "उसके पालन करने में हम केवल उसी सही सिद्धान्त का पालन करेंगे ताकि कल पाखण्ड का कोई गलत स्वरूप खड़ा न हो जाए।"

गुरू महाराज जी की प्रेरणा का असर प्रभावशाली था। सब प्रेमी यह सुनकर उठ खड़े हुए। कहने लगे, "नहीं ओम जी ठीक कह रहे है । चिता की यह हडडी और राख सब जमुना में प्रवाहित कर दी जावे या यहीं पेड़ों में डाल दी जावे।"

संस्कार के तीसरे दिन लोग महाराज जी के शरीर के फूल इकट्ठे करने लगे। मैंने उनसे कहा कि फूल इकट्ठे न करो, कोयला निकाल कर एक तरफ फेंक दो और बाकी राख और फूल सब इकट्ठे करके तीन-चार बोरियों में भर लो । इस प्रकार उन कोयलों को एक तरफ करके सारी राख चार बोरियों में प्रेमियों

ने भर ली। इन प्रेमियों में प्रेमी लद्धा राम, प्रेमी ओम प्रकाश संघाड़ी, प्रेमी सीता राम बख्शी तथा एक अन्य प्रेमी थे। इन चार प्रेमियों ने उन कहाँ को अपने सिर पर रखा और हथनी कुण्ड में जमुना में प्रवाहित कर दिया। इसके बाद मैं घर आ गया। दो-तीन दिन बाद ही बाबू अमोलक राम मेरे पास आये और कहने लगे—

"ओम जी, चलो मेरे साथ।"

मैंने उनसे पूछा- "प्रेमी क्या बात है?" उन्होंने बताया- "ओम जी, ऐसा हुआ कि लोग वहाँ गंगाजल लाकर और बतासे व फूल लाकर वहाँ चढ़ाने लगे है।"

मैं बाबू अमोलक राम के साथ फिर जगाधरी पहुँचा। वहाँ जाकर मैंने देखा कि लोगों ने उस स्थान के चारों ओर जहाँ महाराज जी के शरीर को जलाया गया था ईटों की बाड़ लगा दी हैं और प्रेमी उसके चारों ओर बैठे हुए हैं। मैंने फटकारते हुए उन लोगों से कहा-

"तुम लोगों को शर्म आती है, तुम लोग मुर्दा हो ? गुरु की आज्ञाओं की अवहेलना हो रही है और तुम इन्हें ऐसा करने दे रहे हो? यहाँ चारों ओर ईटें लगाने का क्या मतलब है इन ईटों को उठाओ। उन्होंने उन ईटों को उठाकर एक तरफ फेंका। मैंने इस जगह को खोदा क्योंकि उस जगह जहाँ पर कि महाराज जी के शरीर को जलाया गया था वह जगह जल गई थी और उसमें फिर घास भी पैदा नहीं हो सकती थी। मैंने गैंती और फावड़ा मंगवाया और उस मिट्टी को निकाला और उस मिट्टी को आश्रम के पेड़ों में डलवाया। फिर दूसरी मिट्टी वहाँ बिछाई। फिर घास के पौधे लाकर वहाँ लगाये। इस प्रकार मैं 20 दिन तक वहाँ ठहरा और इस दौरान मैं रोज दिन में तीन बार उस दूब (घास) को पानी से सींचता रहा। जब आस-पास की जगह और उस जगह में कोई फर्क नहीं रहा तब मैं वहाँ से वापस घर आया।

(कथानक -18)
"बीती हुई यादें"

समता सत्संग सम्मेलन जगाधरी 1953 ई0 में निर्विघ्न सम्पूर्ण हुआ, फिर सत्गुरू देव महाराज ने मुझ से कहा “ओम, तुम्हें कब घर जाना है?

मैंने कहा---

"महाराज जी, जब आप की आज्ञा होगी, तभी जाऊँगा"

इस पर श्री महाराज जी ने कहा-

" तुम दो दिन बाद घर वापिस लौटना ।"

श्री महाराज जी का अम्बाला जाने का प्रोग्राम था। और उससे आगे मलोट अबोहर होते हुए तरन तारन चले गये वहाँ से अमृतसर जाकर उनका शरीर शान्त हो गया।

उन दिनों ग्रंथ श्री समता प्रकाश का हिन्दी रूपान्तर किया जा रहा था, जोकि करीब करीब सम्पूर्ण हो गया था और उसकी दुरूस्ती की जाँच की जा रही थी। इस बीच एक घटना और घटी कि भगत श्री बनारसीदास जी अपने बहनोई से मिलने सहारनपुर गये थे। जब वह समय पर नहीं लौटे तो श्री महाराज जी को, बाबू अमोलक राम को उन को लिवालाने के लिए भेजना पड़ा। श्री भगत जी आ गये और श्री महाराज जी की आगे की यात्रा की तैयारी होने लगी। इस बीच श्री गुरू जी महाराज ने मुझ से कहा कि तू इसे समझा, गुरू के पास रहकर रिश्तेदारों से ज्यादा सम्बन्ध नहीं बनावे, वे उसका दिल उचाट कर देंगे, फिर यह गुरू चरणों में रहने के योग्य नहीं रहेगा।

मैंने श्री भगत जी से एकान्त में उन्हें अलग ले जाकर अपने तरीके से

यह बात कही। श्री भगत जी ने मेरी बात बड़े गौर से सुनी और कहने लगे-
"ओम जी, मैंने इतना वक्त श्री महाराज जी के साथ गुजारा है, मेरा कुछ नहीं बना।"

इस पर मैंने कहा--

"भगत जी, हौसला रखें, यह मार्ग बड़ा कठिन है। श्री महाराज जी का भी यह चौथा जन्म है, तब यह अवस्था प्राप्त हुई है। पिछले तीन जन्म से इस मार्ग में लगे हुए थे। हमें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। क्या आप को यह यकीन हैं कि महाराज जी पूर्ण सत्पुरूष है?"

श्री भगत जी ने इस पर कहा, ---

"इस में कोई शक नहीं कि श्री महाराज जी एक महान हस्ती हैं और हर प्रकार से वासना रहित अवस्था को प्राप्त है, मगर मेरे अन्दर तो वासनाओं का गुबार सा उठना रहता है। बड़ी कोशिश करने के उपरान्त भी यह गुबार शान्त नहीं होता और मुझे आगे से आगे बहकाता रहता है। आप ही बताओ कि मैं क्या करूँ?"

इस पर मैंने श्री भगत जी से कहा--

"कि आप श्री महाराज जी से इस के लिए मदद माँगें 'वे' बड़े दयालु हैं, और आप को बड़ा प्यार करते हैं, 'वे' अवश्य ही आप की इस दिशा में इमदाद (सहायता) करेंगे। आप को संगत और प्रेमियों की तरफ से मुंह मोड़ कर केवल श्री महाराज जी की तरफ अपना ध्यान स्थिर करना चाहिए। मैं स्वंय अपने तरीके से श्री महाराज जी बात करूँगा । श्री महाराज से मिल कर मैंने उन्हें श्री भगत जी की सारी मनोदशा की तस्वीर कराई और प्रार्थना की—

कि 'गुरु देव जी आप उनको उनके (श्री भगत जी) सुबह से शाम तक की दिन चर्या का प्रोग्राम लिख कर दें, जैसा भी आप ठीक समझे ताकि उस पर चल कर वह अपनी आध्यात्मिक उन्नति का लाभ उठा सके। उनका मन भी चंचल है और वे बड़े दुखी हैं। आप की बड़ी मेहर होगी। गुरूदेव, उनका मन शान्त होकर आप के चरणों में लगने वाला बन जावे ।

गुरूदेव जी ने कहा-

"ओम, बहुत बार इसको कहा है, कि तू दुनियादार लोगो का साथ न कर, उनके संग से बुद्धि उन जैसी ही बन जाया करती है। संग का महान असर है ।

इन फकीरों के पास रहकर, जिनके जीवन का हर पल उसके सामने मौजूद है, उससे प्रभावित न होकर, यह संसारी लोगों के आले-दिवाले (आस-पास) चक्कर लगाता रहता है। "बैठा तू गुरू दरबार में होता है पर चिन्तन और कहीं का करता हैं।"

इन पर मैंने श्री महाराज जी से प्रार्थना कि आप श्री भगत जी को प्रोग्राम लिखित रूप में दें, उस प्रोग्राम के मुताबिक दिनचर्या (Routine) अपने जीवन का बनावें। इसके बाद श्री गुरूदेव जी अपनी कुटिया में चले गये।

पाँच-सात मिनट में उन्होंने एक पर्चा लिखा। अपनी कुटिया के पीछे वाले स्थान पर श्री महाराज जी आप पहुंचें, मैं भी साथ ही पीछे पीछे चला आया।

मुझे अच्छी तरह याद है कि श्री महाराज जी के बैठने के स्थान (जिसे अब श्री महाराज जी की कुटिया कहते है) उसकी दक्षिणी दीवार के पीछे हम दोनों खड़े थे। श्री भगत जी को बुलाया गया। मैंने श्री भगत जी की तरफ से प्रार्थना की कि आप इन पर (श्री भगत जी पर) मेहर बरतायें।

श्री महाराज जी बोले-

प्रेमी (बनारसी) को 'ये' बहुत प्यार करते है, और बार-बार इसको कहा जाता है, यह उस ध्यान नहीं देता। बार बार कहने से आदमी जिद्दी हो जाता है, इसलिए इन्होंने अब कहना छोड़ दिया है। तुम कहते हो कि. महाराज इनको कोई प्रोग्राम देवें, तो 'ये' वह प्रोग्राम लिख कर ले आये हैं तुम इन्हें दो, इस प्रोग्राम के मुताबिक चलने पर इनका अवश्य कल्याण होगा।"

मैंने वह नोट (श्री गुरू आज्ञा जो श्री भगत जी के लिए महाराज जी ने अपने कर कमलों से लिखकर दी थी) श्री महाराज जी से लेकर श्री भगत जी को दे दी, तथा श्री भगत जी व श्री महाराज जी दोनों के चरण छू कर मैंने कहा, "श्री गुरूदेव जी मेहर कर रहे है और श्री भगत जी स्वीकार कर रहे हैं। मैं दोनों का ऋणी होऊँगा अगर यह कार्यवाही सिरे चढ़ी तो ।
श्री भगत जी ने कहा---

"में पूरी कोशिश करूँगा आज्ञा पालन करने की जो श्री महाराज जी ने लिख कर दी हैं।"फिर इन्होंने श्री महाराज जी के चरण छुए, इसके बाद यह छोटी सी मीटिंग समाप्त हो गई।

वह आज्ञा जो श्री महाराज जी ने भगत जी के लिए लिख कर दी थी, नीचे दी जा रही हैं---

प्रेमी बनारसी दास के वास्ते प्रोग्राम-

1) भोजन एक वक्त खाना होगा, सिर्फ एक भाजी के साथ। भोजन बहुत साधारण होना चाहिए।
2) 2) कम-अज-कम (न्यूनतम) दो घण्टे सुबह और दो घण्टे शाम को अभ्यास करना होगा।

3) किसी प्रेमी के घर जाने की कोई जरूरत न होगी, अगर मजबूरी कहीं जाना हो, तो इजाजत लेकर जा सकते हैं।

4) कुछ समाँ रोजाना स्वाध्याय करना होगा।

5) दाढ़ी पन्द्रहवें दिन तक मुण्डवानी होगी, अगर बहुत मजबूरी होवे तो।

6) ज्यादा से ज्यादा संगत सेवा या तो सत्संग में पाठ करना होगा या गाह बगाह (यदा-कदा) किसी प्रेमी को पत्र लिख देना होगा। अगर परमार्थ में यह प्रोग्राम भी बाधक होवे तो बन्द कर दिया जावेगा।

7) अधिक मजबूरी हुई तो किसी रिश्तेदार के घर जाने की इजाजत जावेगी, क्योंकि रिश्तेदारों के साथ तालुकात (सम्बन्ध) रखते हुए मोह की अग्नि प्रचण्ड होती है। खैर जो भी काम करना हो, उसमें पहले गुरु आज्ञा लेनी होगी।

8) और भी कोई हालात विघ्नकारी मालूम हुए तो उनसे गुरू आज्ञा के मुताबिक ही अपने आप को बचाना होगा।

(कथानक -19)
"बीती हुई यादें"

मैं अपने किसी पारिवारिक कार्य हेतु देहली गया हुआ था। दिनांक 04-02-1954 (चार फरवरी सन् उन्नीस सौ चव्यन) का जिक्र है, कि मैं प्रेमी भाई मालिक भवानी दास जी से मिलने उनकी दुकान पर गया जो अजमल खाँ रोड पर स्थित थी। मैं वहाँ बैठा ही था कि इतने में क्या देखता हूँ, डॉ० भगत राम जी बड़ी सुस्त अवस्था में वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर ऐसा मालूम होता था जैसा कि उन्हें कोई बहुत बड़ी सदमा या भारी नुकसान हो गया है।

आदर भाव से में खड़ा हो गया और उन्हें (डॉ0 भगत राम जी को) बैठने के लिए कहा। उन्होंने बैठते ही समाचार दिया कि श्री सत्गुरूदेव महाराज का देहावसान अमृतसर में हो गया है, यहाँ से भगत बनारसी दास जी का तार आया है, श्री महाराज जी के पार्थिव शरीर को लेकर सभी लोग जगाधरी आश्रम पहुँच रहे हैं।

इससे पहले कि इस बारे में मैं कुछ टिप्पणी करता, मैंने केवल इतना ही कहा-

"क्या आप ने इस सूचना की पुष्टि कर ली है?
श्री भगत राम जी कहा---

"मैं इस की कोई जरूरत नहीं समझता।"

मैं उन दोनों प्रेमियों को वही छोड़कर श्री भवानी दास के पुत्र श्री किशन लाल मलिक के साथ श्री ओम संघाड़ी के घर गया जो आर्य रोड़ करोलबाग में रहते थे। मैंने श्री संघाड़ी जी से कहा कि मैं आज शाम को ही गाड़ी से जगाधरी पहुँच रहा हूँ, अगर आप चलना चाहें तो मेरे साथ चलें वरना (अन्यथा) देहली संगत के साथ बाद में आ सकते हैं।

इस खबर को सुनकर संघाड़ी जी सन्न रह गये और रोने लग गये। वह श्री गुरूदेव जी को अपने पिता के समान मानते थे, उनके पिता का देहान्त बहुत पहले ही हो चुका था। मैंने उन्हें हौसला देकर समझाया और अपने साथ ही जगाधरी चलने के वास्ते आग्रह किया।

जैसे ही हम दोनों पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन पहुँचे, गाड़ी तैयार खड़ी थी,
हमने टिकट लिया और गाड़ी में बैठ गये।

उन दिनों वह गाड़ी जगाधरी स्टेशन पर नहीं रूकती थी, यह हमें पता नहीं था। रास्ते भर हम आपस में श्री गुरूदेव जी की बातें करते रहे। मैंने प्रेमी ओम सघाड़ी को कहा कि मुझे खबर में कुछ सच्चाई महसूस नहीं हो रही है चूंकि श्री महाराज जी योगी थे। इन्होंने (श्री महाराज जी ने) इससे पहले अपने शरीर पात होन का तकरा In particular (विशेषरूप से) नहीं किया। वैसे तो सत्संग वगैरह में शरीर के नाश होने का तज़्करा (वर्णन) आम (प्रायः) रहता था परन्तु इन्हीं दिनों ऐसी कोई बात उन्होंने नहीं की।

पिछले दिनों जब अम्बाला शहर के श्मशान घाट के बगल में स्थित एक टैण्ट में श्री महाराज जी से मेरा मिलाप हुआ था, तो उन्होंने इस बारे में कोई जिक नहीं किया था, ना ही कोई इशारा किया था। बड़े प्यार से विदा किया था और हिन्दी ग्रन्थ की छपाई के बारे में मशीन प्रूफ का एक पृष्ठ जो महाराज जी को दिखाने में लखनऊ से लेकर आया था, उसे देखकर पसन्द किया था (सन्तुष्टि व्यक्त की थी) और आगे निर्देश भी दिए थे।

मैं समझता हूँ कि श्री महाराज जी समाधि अवस्था में समाधिस्थ हो गये होगें जबकि प्रेमियों ने उन्हें निष्प्राण समझ लिया होगा जाकर देखेंगे कि क्या अवस्था है। मैंने ऐसे योगियों को देखा है, जो इस तरह हो जाया करते हैं।

बगैर जगाधरी रुके, गाड़ी अम्बाला कैन्ट की ओर बढ़ चली और

प्रातः चार बजे के करीब अम्बाला कैन्ट जाकर रूकी। वहाँ हम उतरे और दूसरी गाड़ी से फिर वापिस जगाधरी रेलवे स्टेशन पहुँचे ।

स्टेशन से बाहर आकर एक सालम (पूरा) तांगा जगाधरी आश्रम के लिए किया और हम दोनों सीधे आश्रम पहुँच गये। आश्रम पहुँच कर देखा कि आश्रम सुनसान था, कुछ प्रेमी श्री महाराज जी के पार्थिव शरीर के पास बैठे रो रहे थे, फूल तथा फूल मालाएँ पार्थिव शरीर पर चढ़ा रखी थी। मेरे वहाँ पहुँचते ही उन प्रेमियां ने रोना तेज कर दिया था। मैंने दोनों हाथ ऊपर उठाकर उन्हें शान्त किया। मैं श्री महाराज जी के शरीर के पास गया, मेरा मात्र भाव (केवल उद्देश्य) उन के शरीर को जाँचने का था कि शरीर निष्प्राण है या कि श्री गुरूदेव महाराज जी समाधि अवस्था में है। ?

आँखें देखने से पता चला कि एक आँख बन्द थी, एक आँख थोड़ी खुली थी, जो इस बात का संकेत था कि हैमरेज हुआ है

आँखों की पुतली सफेद हो गई थी और शरीर में कहीं भी कोई स्पन्दन नहीं था। निर्णय हो गया कि प्राण शरीर को छोड़ चुके हैं।
इसके बाद, गुरूदेव के पार्थिव शरीर को वही छोड़कर मैं बाहर आ गया एवं विचारों और चिन्तन खो गया।
सिंघाड़ी जी मुझ से कहने लगे-

“ओम भईया ! अब हमारा क्या होगा?" मैंने उन्हें ढाढ़स दिया, और कहा घबराने की जरूरत नहीं है। श्री महाराज जी की परम सत्ता हमारी रहबर (मार्ग दर्शक) है। उनके वचन और आशीर्वाद हमारे साथ हैं। वही सदैव हमारा मार्ग दर्शन करेंगे। शरीर तो तीन काल अन्तवत्त है। हमें इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। हमारे गुरूदेव सदैव हमारे अंग संग है, सदैव हमारे साथ ही हैं।

(कथानक -20)
बीती हुई यादें"

सन् 1951 का जिक्र है। मैं सम्मेलन पर जगाधरी गया हुआ था। मेरे बहुत नजदीकी दोस्त ने एक पार्सल जर्मनी से मुझे भिजवाया। वह Insured Parcel था। उसमें कुछ किताबें और कुछ कपड़े वगैरह थे। मेरे देहरादून में न होने के कारण देहरादून वालों ने जगाधरी पते पर उसे Redirect कर दिया था। जब वह पार्सल जगाधरी पहुँचा तो बाबू अमोलक राम जी जो उस वक्त आश्रम की डाक वगैरह बाजार से लाते थे और डाकखाने से डाक Collect करते थे। वे वहाँ गये और उन्हें पता चला कि ओमकपूर का एक पार्सल देहरादून से Redirect होकर यहाँ डाकखाने में आया हुआ है। यह जर्मनी से आया हुआ पार्सल है। यह पार्सल ओमकपूर को वही डाकखाने में ही जाकर लेना पड़ेगा।

अमोलक राम जी श्री महाराज जी के पास आये और उन्होंने श्री महाराज जी से कहा---

"महाराज जी, ओम कपूर का एक पार्सल जर्मनी से आया हुआ है। यह पार्सल देहरादून से Redirect हो कर यहाँ पहुँचा है। यह पार्सल ओम कपूर जी को वहीं डाकखाने में जाकर लेना पड़ेगा, वे यहाँ उसे नहीं देंगे।"

श्री महाराज जी ने कहा-

"उसे वापस कर दो। ओम कपूर इस वक्त गुरु आश्रम में आया हुआ है और गुरू आश्रम में आने के बाद वह बाज़ार में नहीं जाएगा। पार्सल लेने के वास्ते । उस पार्सल को वापस कर दो ।

बाबू अमोलक राम ने श्री महाराज जी को बताया-

"महाराज जी, वह पार्सल हिन्दुस्तान का नहीं है। हिन्दुस्तान का होता तो वह वापस हो जाता। वह जर्मनी का पार्सल है वह जर्मनी वापस नहीं जाएगा और यहीं पर नष्ट कर दिया जाएगा। इसलिए बेहतर होगा कि आप कोई तरीका निकाले जिससे कि ओम कपूर खुद जाकर उस पार्सल को छुड़ा लें।"

श्री महाराज ने कुछ सेकेण्ड रूक कर कहा-

"अच्छी बात है, तुम ओमकपूर को बाहर देहात के रास्ते से डाकखाने ले जाना। (डाकखाना उस वक्त देहात के पास ही बना हुआ था, शहर में नही था) शहर से होने के नाते जब मैं देहात के रास्ते से डाकखाने गया तो बाबू अमोलक राम ने मुझे उस पार्सल की पावती Delivery दिलवाई इसके बाद वह बाहर देहात के रास्ते से ही मुझे लेकर वापस आश्रम में पहुँचे।

श्री महाराज जी का कहना इस बात से यही था कि जब आदमी आश्रम में गुरू-घर में आवे तो वह सैर-सपाटे की नियत से या बाजार के अन्दर जाने से या शहर में जाने से उसकी चित्तवृति शहर या बाजार में लग जाती है। तो उसको एक मात्र अपने गुरू स्थान पर रहकर गुरू का चिन्तन करके रहना चाहिए बजाय इसके कि वह इधर-उधर घूमे।

श्री महाराज ने मुझे बाजार में से नहीं जाने दिया। पार्सल लेने के वास्ते भी, उन्होंने बाबू अमोलक राम से कहा कि तुम इनको बाहर से जंगल के रास्ते ले जाओ और डाकखाने से इनको पार्सल दिलाकर उस जंगल के रास्ते से ही पुनः आश्रम में छोड़कर तब तुम शहर में जाना।

बाबू अमोलक राम जी ने ऐसा ही किया और ऐसा करने के बाद मैं वह पार्सल लेकर आश्रम आया।

इस वाक्या से एक ही सबक मिलता है कि जब हमलोग आश्रम में जावें तो हमें श्री गुरू महाराज की इस हिदायत को सामने रखना चाहिए कि हम कहीं इधर-उधर न जावें। सिर्फ आश्रम में ही रहें और जब आश्रम का वक्त हमारा पूरा हो जाये वहाँ ठहरने का, तब सीधे अपने घर जावें। यही गुरु-घर के प्रति हमारा आर्दश होना चाहिए। यदि यह आदर्श हम गुरू-घर के प्रति नहीं रखेंगे तो फिर हम श्री गुरू महाराज जी की आज्ञा का पालन नहीं कर पायेंगे।

(कथानक - 21)
"बीती हुई यादें"

नवम्बर सन् 1953 का जिक्र है, श्री सत्गुरू देव जी महाराज अम्बाला शहर के शमशान घाट के नजदीक एक बगीचे में तम्बू (टेन्ट) के अन्दर निवास कर रहे थे। इत्तिफाक (संयोग) से अम्बाला के स्पेशल मैजिस्ट्रेट श्री चिरंजीत लाल जी, जो श्री सतगुरू देव जी महाराज के बचपन में सहपाठी रहे थे, और श्री महाराज श्री के हैडमास्टर साहब के लड़के थे, श्री महाराज जी से मिलने के लिए तम्बू में पधारे।

श्री गुरूदेव जी महाराज ने बड़े प्रेम से उनको अपने पास बिठाया और आपस में बचपन की बातें होती रही।

श्री चिरंजीत लाल जी से श्री महाराज जी ने सवाल किया---
"प्रेमी, आप कहाँ तक पहुंचे है?"

श्री चिरंजीत लाल जी ने उत्तर में कहा-
"मैं पंजाब गवर्नमेण्ट का स्पेशल मैजिस्ट्रेट हूँ और सैशन कोर्ट में दूसरे नंबर पर मेरी कोर्ट है।"

श्री चिरंजीत लाल उत्तर में कहा--
"मैं पंजाब गवर्नमेण्ट का स्पेशल मैजिस्ट्रेट हूँ और सैशन कोर्ट में दूसरे नम्बर पर मेरी कोर्ट है।"

इस पर श्री सतगुरू देव जी महाराज ने कहा,-
"अच्छा है, आप ने दयानतदारी से तरक्की की है और आगे भी इस मार्ग पर अपने आप को ऊँचे अखलाक (चरित्र) का बनावें। "

इस पर श्री चिरंजीतलाल जी ने श्री महाराज से यही सवाल कर दिया "महाराज जी आप कहाँ तक पहुंचे है ?"
इस पर श्री सतगुरू देव जी महाराज कहा---

" चिरंजीत लाल जी जहाँ पर इल्म (ज्ञान) और मालूमात (जानकारी) खत्म होती है, वहाँ तक पहुँचे हैं। कुछ आज़माना या मालूम करना हो तो तसल्ली कर लेवें। "

इस पर स्पेशल मैजिस्ट्रेट साहब चुप हो गये।

कुछ अर्से (समय) के बाद, श्री चिरंजीत लाल जी महाराज के चरणों में आ गये और शिष्य बन गये।

(कथानक - 22)
"बीती हुई यादें"

श्री सतगुरू देव जी महाराज अप्रैल 1953 ई0 की गर्मियों में मोहिनी रोड (देहरादून) के आखिर में रिस्पना नदी के किनारे, एक खाली बंगले में ठहरे हुए थे। यह बंगला सेंट्रल गवर्नमेण्ट के किसी ऑफिसर का था, जो उन दिनों खाली पड़ा था। देहरादून के प्रेमियों ने कोशिश करके, श्री सतगुरु देव जी महाराज के कुछ दिन ठहरने के लिए, उसे ले लिया था।

देहरादून शहर के बहुत से सत्संग प्रेमी इस स्थान पर श्री महाराज जी के दर्शन करने के लिए आते रहते थे। एक दिन का जिक्र है, इत्तिफाक (संयोग) से पंडित ठाकुर दत्त जी वैद्य (अमृत धारा फार्मेसी देहरादून के प्रोप्राइटर एवं आर्य समाज देहरादून के प्रधान तथा देहरादून नगर के गणमान्य व्यक्ति) श्री महाराज के दर्शन हेतु आ गये।

श्री महाराज जी ने बड़े आदर से उन्हें अपने पास बिठाया, और कहा—

"प्रेमी, कोई सत् विचार करें।"

इस पर पं० ठाकुर दत्त जी बोले-

"महाराज जी, मैं ने आयुर्वेद शास्त्र का अनुसंधान (रिसर्च) के लिए एक ट्रस्ट कायम किया है, चूंकि बड़ा अरसा (समय) बीत गया है, आयुर्वेद का अनुसंधान नहीं हुआ है। श्री महाराज जी ने उनके इस कार्य की प्रशंसा की और कहा कि आप के इस कार्य की भारत में औषधि क्षेत्र में बहुत उपलब्धि होगी। आप ने अच्छा काम किया हैं

वैद्य जी ने फिर महाराज जी से निवेदन किया--

"मैंने अपने भवन में एक अनेक्सी (annexe) बनाई है, जिसमें

महात्मा लोग आकर ठहरते हैं। आजकल वह खाली है। आप से प्रार्थना हैं, कि आप वहीं चल कर ठहरें, आप की सभी सहूलियत का ध्यान रखा जाएगा।

इस पर श्री महाराज जी ने फरमाया-

"प्रेमी यह तो कोई सन्त महात्मा नहीं हैं, यह तो एक साधारण देहाती आदमी हैं। देहरादून के कुछ प्रेमियों को 'इनके' पास आने का मौका मिला और ये इनको यहाँ उठा लाये। यह स्थान ठीक ठाक है, कहीं दूसरे स्थान पर जाने की जरूरत नहीं। इनका यह नियम है कि एक बार जहाँ एक बार आ कर बैठ गये उस स्थान पर समय काट कर जब दूसरे स्थान (नगर) जाना हो, तभी जाते है।"

श्री सत्गुरु महाराज का यह उत्तर सुनकर वैद्य जी चुप हो गये। कुछ देर बाद श्री वैद्य जी ने श्री सत्गुरू महाराज से प्रश्न किया---

" महाराज जी, आत्मा और परमात्मा में क्या फर्क (भेद) है?"

श्री महाराज जी मुस्करा कर बोले---

"तुम्हे इन बातों से क्या मतलब है? यह तो आशिकों (ईश्वर के प्यारों) का सौदा है। "
श्री वैद्य जी ने फिर कहा---
“महाराज जी मेरी यह जिज्ञासा है।"

श्री महाराज ने बड़े शान्त भाव से उन्हें कहा--

"प्रेमी, यदि जिज्ञासा है, तो तेरी जेब में इस सौदे को खरीदने के लिए कुछ दमड़े है? कुछ असासा (सम्पत्ति) है, जिसको देकर अपनी जिज्ञासा कर सको या सिर्फ भात (स्ट) पूछने आये हो?

दुनिया की धन दौलत से यह जिज्ञासा शान्त नहीं हो सकती। इसके लिए तुम्हें सरल और सादा होना पड़ेगा, अपने दिल और दिमाग को हलीम (विनम्र) और निष्कपट करना होगा। यह जो तूने सिर पर, ताशकन्दी लुगीं पहन रखी है, आंखों में काला सुरमा डाल रखा है, हाथ की अंगुलियों में चार पाँच छापे (अंगूठी) पहन रखी हैं, कानों में सोने के बाले पहन रखे हैं, पहले तू इन चीजों से बाहर निकल। एक साधारण जिज्ञासु अपने आप को बना, तब आत्मा व परमात्मा की बात जानने को अधिकारी हो सकता है। प्रभु प्यारों के मामले में टिचकर बाजी करना तुम लोगों का धर्म नहीं है । यह आशिंकों (प्रभु प्यारों) के मसले हैं जो आत्मा परमात्मा के निर्णय करते हैं"

श्री सत्गुरू महाराज जी का यह उत्तर सुनकर श्री वैद्य जी निरूत्तर हो गये और सिर नीचा करके वहाँ से चले गये।

(कथानक -23)
"बीती हुई यादें"

लगभग 50 वर्ष पुरानी बात है श्री सतगुरू देव जी महाराज से मिलने, मैं अम्बाला शहर गया था। वहाँ शहर में एक तालाब किनारे, अहाते के कमरे में श्री महाराज जी ठहरे हुए थे। शहर में रिक्शा चलाने वाला एक आदमी, उसका नाम 'शिवां दित्ता' था, अक्सर श्री महाराज जी के पास आकर बैठता था।

उसका सज्जन पुरूष ने श्री महाराज जी से एक दिन पूछा-

"सांई लोगों। मैं सुबह से शाम तक अपनी मेहनत मजदूरी के काम में लगा रहता हूँ, आप बतलावें कि अल्लाह वाले रास्ते पर कैसे चल सकता हूँ

श्री महाराज जी ने कहा---

"तुम अल्लाह वाले रास्ते पर क्यों नहीं चल सकते, जरूर चल सकते हो, अगर तुम्हारे दिल में शौक हो तो। फकीरों की बात मानोंगे? "

उस रिक्शा चलाने वाले आदमी ने बड़ी आजज़ी (नम्रता) से उत्तर दिया----

“श्री महाराज, आप हुक्म तो फरमावें।”

इस पर श्री महाराज ने उसे समझाते हुए कहा-

“ऐसा है तुम्हें सुबह 10 बजे रिक्शा चलाना शुरू करना है, और शाम 5 बजे तक जितना पैसा बन जावे, वह तेरी मजदूरी है, उसी में तूने गुजारा करना है। अगर तेरी इस मजदूरी से ज्यादा पैसे पहले ही बन जावें, तो बीच में काम छोड़ देना है। अगर कभी न बन पावें तो भी शाम 5 बजे हर हालत में रिक्शा चलाना छोड़ देना है, बांहे पैसे बने या न बनें। यह

फकीरों की बात है, अगर तू इस नियम पर चलता रहा तो कुदरत कामला (प्रकृति) खुद इन्तजाम करेगी और पाँच बजे से पहले ही तेरा काम बन जावेगा। फिर तू अल्लाह की याद और सिमरन अभ्यास में लग जाना।

उस रिक्शा वाले व्यक्ति ने पुनः एक समस्या श्री महाराज के आगे रखी -
*श्री महाराज जी, अगर शहर में किसी कारण भीड़ ज्यादा हो गई या बरसात पड़ने लगे तो फिर क्या होगा ?"

इस पर श्री महाराज जी ने कहा---

"तू भीड़ और बरसात की बात छोड़। तूने सुबह 10 बजे से शाम 5 बजे तक शरीर के पालने के लिए ड्यूटी देनी है और 5 बजे शाम तक हर हालत में रिक्शा चलाना छोड़ देना है।

फकीरों की बात पर यकीन करके अगर पैसे पूरे हो गये तो ठीक है वरना उसे अल्लाह की मर्जी समझ कर, जो मिलता है, उसी में गुजारा करना है।"

उस रिक्शा वाले ने श्री महाराज जी की बात बड़े गौर से सुनी और उस दिन के बाद वह लगातार उसी बताये हुए नियम पर चलता रहा, प्रातः 10 बजे रिक्शा चलाना शुरू करता था और शाम 5 बजे तक हस्वमामूल (नियमतः प्रतिदिन की भाँति) रिक्शा चलाता था। यह सिलसिला, उस भद्र पुरुष के शरीर शान्त होने तक चलता रहा।

एक दिन उक्त रिक्शा वाले व्यक्ति ने मुझे बताया था-

"कि इस नियम पर चलते हुए, उसके पैसे तो पाँच बजने से बहुत पहले ही पूरे हो जाते थे, शाम के 5 तो बड़ी देर में बजते, प्रतीत होते थे। वह समय से पहले ही नियमानुसार रिक्शा चलाना छोड़ दिया करता था। ऐसा करने से वह आदमी बड़ा ही शान्त प्रकृति का हो गया था। उक्त

नियम का पालन करते करते उस भद्र पुरुष ने अन्त समय तक बहुत शान्त सामान्य, धैर्यवान एवं सन्तोष-मय जीवन यात्रा समाप्त की।

श्री सत्गुरू देव जी महाराज की आज्ञा पालन करने का यह प्रत्यक्ष एवं व्यवहारिक आर्दश उदाहरण है, जो इन्सान सच्चे गुरू की बात को मानकर, किसी भी दलील (हठधर्मी) को छोड़कर, चल पड़ते हैं और फिर पूरा यकीन रख कर चलते हैं, तो उनके कार्यो की, कुदरत कामला (प्रकृति) की कृपा से एवं फकीरों की मेहर से, अपने आप पूर्ति हो ही जाती है।

(कथानक -24)
"बीती हुई यादें"

स्व प्रेमी माया राम जी (किस्तवाड़ निवासी, जम्मू कश्मीर स्टेट) की श्री सद्गुरूदेव महाराज जी से श्री नगर में वार्तालाप (ता0 26.06.1950):-

प्रेमी मायाराम प्रणाम करके श्री महाराज जी के चरणों में बैठ गया।

श्री सद्गुरूदेव महाराज जी फरमाने लगे- "प्रेमी क्या सोच रहे हो?"

प्रेमी- "महाराज जी, मेरे पर भी कृपा की जावे और सेवा के लिए चरणो में जगह भी दी जावे।"

श्री सद्गुरूदेव जी महाराज -- "पहले घर वालों को तिलान्जली दे आओ, फिर भिक्षु बनना। ब्राह्मण के तुम बच्चे हो। तुम्हारा कर्तव्य है संगत की सेवा करना और ईश्वर की याद करना। क्या तुम मांस वगैरह खाते हो?"

प्रेमी --- "महाराज जी बहुत कम खाया है। अन्तर (अन्दर) से अच्छा नहीं लगता। किसी समय संगत की वजह से खाना पड़ता है। आज से बिल्कुल नहीं खाऊँगा।"
श्री गुरूदेव महाराज-

सेवादार बनना बड़ा मुश्किल है। इधर कोई तनख्वाह वगैरह नहीं मिलेगी। जो गुरू दरबार से साग भाजी मिले उसे खाकर समां (समय) गुजारना होगा। पहले सोच लो पहले जमाने में जब कभी किसी को सेवा में लेते थे, कान काट कर उसकी परीक्षा की जाती थी। फिर 12 वर्ष तक सेवा करवा कर दीक्षा देते थे। भिक्षु बनना कोई आसान नहीं है। भिक्षु को चाहिए कि घर से कम-अज-कम पाँच दस मील के फासले पर जाकर निवास करें। घर वालों को बिल्कुल याद न करे। जो कुछ अपने पास

सरमाया हो सब गुरू अर्पण कर देवे या गरीबों में तकसीम कर देवे (बाँट देवे), फिर बे-आस होकर धर्म-मार्ग में कदम रखे।

आजकल की तरह नहीं कि जो सरमाया वगैरह हुआ। सब घरवालों के नाम करवा कर आप दूसरों की रोटियों पर पड़ जावें। अगर घर वालों का कोई ख्याल हो तो पहले उनकी सेवा कर लो। तुम से ये सरमाया नहीं। मांगते। ना ही तुम्हारे पास कुछ होगा। अगर फिर घरवालों का आकर चाकर बनना है। तो पहले ही सोच लो। इनको तेरी जरूरत नहीं है। तुझे अपने कल्याण की जरूरत है तो विचार कर लें। किसी भेष में तुझको नहीं डालना है। सेवा, सिमरण करके समां (समय) व्यतीत करो। अच्छी तरह विचार करके पता देना फिर समां (समय) मिलेगा। जल्दी की कोई बात नहीं है, अभी काफी समां (समय) इधर ही हैं।

(कथानक - 25)
"बीती हुई यादें"

पंडित राम प्रकाश (अम्बाला शहर) की महाराज जी से वार्तालाप पं० राम प्रकाश:-

"महाराज, किसी को अपने आप को ब्रह्म कहने का अधिकार है?

श्री महाराज जी---

प्रेमी, किसी को अपने आपको ब्रह्म कहने का अधिकार नहीं है।"

पं० राम प्रकाश—

"क्या ब्रह्म अवस्था प्राप्त पुरूष को भी यह अधिकार नहीं है?"

श्री महाराज जी--

"नहीं प्रेमी, यह वाणी तथा जीभ प्रकृति की चीजें हैं। यह कैसे अपने आप को ब्रह्म कह सकती है?"

पं० रामजीदास (गुरदास पुर वाले) का महाराज जी से वार्तालाप:-

पं० रामजीदास---

"गुरुदेव यदि आप कुछ ऋद्धि-सिद्धि दुनिया को दिखायें तो दुनिया ईश्वर पर विश्वास ला सकती है। "

श्री महाराज जी-

"यह फकीर ऋद्धि-सिद्धि दिखलाकर रीठे मीठे करने वाले नहीं है, बल्कि यह इंसानों के दिलों को मीठा करने वाले हैं। यानी इंसान जो अपने अन्दर कडुआपन, भ्रष्टपन है उसके मुकाबले में दिलों में प्रेम, दीनता और सदाचरण पैदा करने वाला हो।"

(कथानक -26)
"बीती हुई यादें"

देहरादून में श्री राम लाल नारंग नाम के हमारे एक मित्र थे। जो एक आर्किटेक्ट थे। एक बार वे श्री महाराज जी के दर्शन करने के वास्ते तुलतुलिया केलाघाट पर पधारे। राम लाल नारंग प्रकृति प्रेमी थे और चश्में नहरें आदि में आन्नद लेने की उनकी रूचि थी। श्री महाराज जी के तम्बू के रिस्पना नदी पर एक डाम बना हुआ था, जिसमें नदी में ज्यादा पानी आ जाने पर बजरी भर जाती थी और फिर नहर में पानी बंद करके पानी को नदी में छोड़ दिया जाता था जिससे बजरी साफ हो जाया करती थी।

श्री राम लाल नारंग जी उस जगह अपने नहाने का प्रबन्ध करने लगे। वे कभी इधर जा रहे थे कभी उधर जा रहे थे। उनके साथ उनका एक लड़का भी था। श्री महाराज ने जब उन्हें इस तरह चक्कर काटते देखा तो श्री महाराज जी ने मुझसे पूछा-

"यह क्या कर रहा है?"

मैंने जबाब दिया- "महाराज जी यह नहाने का जुगाड़ बना रहा है।"

श्री महाराज जी कहने लगे-

"ओह! यह दोपहर पड़ रही है और यह नहाने का चक्कर ..... । किसने इसे इंजीनियर बना दिया। इसको यह अकल नहीं कि यह वक्त नहाने का नहीं है। यह वक्त तो आराम करने का है, अपना काम करने का है। नहाने का वक्त शाम या सुबह होता है। यह दोपहर में ही नहाने के चक्कर में लगा हुआ है। यह सही निर्णय नहीं ले सकता कि यह वक्त नहाने का समय है। या नहीं। और देखो नहाने के लिए कैसे इधर से उधर भाग रहा है।

फकीर की सोच बड़ी गज़ब की थी। वह आदमी को दूर से देखकर ही बता देते थे कि यह आदमी क्या है और वह कहाँ खड़ा है। ऐसी उनकी सोच-विचार थी ।

(कथानक - 27)
"बीती हुई यादें"

सन् 1953 की गर्मियों का जिक्र है जब श्री सदुरूदेव महाराज केलाघाट (तुलतुलिया चश्मे) के किनारे एक तम्बू में निवास कर रहे थे। उन दिनों कुछ प्रेमी महाराज जी के पास आते-जाते रहते थे। और श्री महाराज जी से सवाल जवाब किया करते थे । इत्तिफाक की बात कि गुरदास पुर से प्रेमी भाई पंडित राम जी दास जी पधारे। पंडित राम जी दास गर्मी के मौसम में उधर से आ रहे थे। गर्मी के कारण सफर में उन्हें बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ा। पसीने में उनके कपड़े भी भीग गये थे। केलाघाट पहुँचकर उन्हें बड़ी राहत मिली ।

केलाघाट का स्थान बड़ा ही सुरम्य था वहाँ पर पास ही एक बगीचा था। उस बगीचे में एक चश्मा था, जिसमें ऊपर से बड़ा ठंडा पानी गिरता था। पंडित राम जी दास जाकर उसमें नहाये और नहाकर उन्होंने बड़ी राहत महसूस की। इसके बाद वे महाराज जी के पास वापस आ गये। उन्होंने श्री महाराज जी से कहा---

"गुरूदेव बड़ा ठंडा स्थान है। मैं बहुत ज्यादा गर्मी से परेशान था,
यहाँ पर बड़ा आनन्द आया ।"

श्री महाराज ने जब उसके यह शब्द सुने तो शिष्य को ठीक करने के वास्ते उन्होंने उसकी मानसिक विचार धारा को बदलने और सही दिशा देने के लिए यह वचन उच्चारण फरमाये---

"बेईमान कहीं के तू यहाँ आनन्द लोढ़ने आया है। तु गुरु के पास आया है, आनन्द लोढ़ने नहीं आया है यहाँ । तू आनन्द की बातें करता है कि बड़ा आनन्द आया नहाकर। लोग तुझे तपते तवे पर बैठायेंगे तब तुझे पता लगेगा कैसा आनन्द होता है।"

फकीर के मुंह से ऐसे शब्द सुनकर पंडित राम जी दास बहुत सकपकाये और रोने लगे। उनकी यह दशा देखकर श्री महाराज जी न उससे पूछा- "क्या बात है?"
पंडित राम जी दास ने जवाब दिया--
“महाराज, आपने तत्ते तवे पर बैठने के लिए मुझे कहा। "
महाराज जी बोले---

“ओह पागल! तत्ते तवे का मतलब है कि लोग तेरा इम्तिहान (परीक्षा) लेंगे कि तू कैसे गुरू का शिष्य है, और तू यह आनन्द लेने के चक्कर में रहता है। फकीरों के पास तुम आनन्द लेने के वास्ते नहीं आते बल्कि तुम 'तकलीफ उठाने के वास्ते आते हो। जो तकलीफ को बरदाशत करता है वही सही रूप में फकीरों का शिष्य होता है। आनन्द लोढ़ने वाला फकीर का शिष्य नहीं होता।" फिर श्री महाराज जी ने एक दोहा पढ़ा-

दुःख को जो जन मित्तर करे पावे सुख अगाध।
प्रभु सेती विश्वास हो, दूर होवें अपराध॥

यानि जो दुःख को दोस्त बनाता है, उस मनुष्य को प्रभु खजाने यानि प्रभु सत्ता के जो वास्तविक खजाने हैं वो उसको प्राप्त हो जाते हैं। अगाध यानि जो कभी खत्म नहीं होता, ऐसा सुख उसको प्राप्त होता है। उसको प्रभु में विश्वास पैदा हो जाता है और उसकी सब कमियाँ नष्ट हो प्रभु जाती हैं।

(कथानक - 28)
"बीती हुई यादें"

माह अगस्त 1953 समा-एकान्त निवास

स्थान- तुलतुलिया-केलाघाट राजपुर, जिला- देहरादून। प्रेमी श्री ओम प्रकाश संघाड़ी जी की श्री सद्गुरूदेव महाराज से वार्तालाप:-

प्रेमी-- "श्री महाराज जी, आखिर, आपके शरीर का एक न एक दिन अन्त हो जाना है। तो आप इस तालीम का क्या हशर (परिणाम) देखते हैं। आने वाले ज़माने में समता की तालीम कैसे फैलेगी ?"

श्री सद्गुरूदेव महाराज---

"प्रेमी, यह तालीम भिक्षुओं के ज़रिये फैलेगी।"

प्रेमी- "महाराज जी आपके इर्द गिर्द जो भी लोग आये हैं वे तो सब गृहस्थी हैं। तो आप का विचार है कि क्या वे सब लोग भिक्षु बन जावें ? " श्री सद्गुरूदेव महाराज ---

"नहीं प्रेमी, ऐसा नहीं है। बल्कि वे अपने गृहस्थ जीवन में भिक्षुओं जैसी जिन्दगी बसर करें और जब अपनी जिम्मेवारियाँ खत्म कर ले तो वे अलग भी हो सकते हैं। भिक्षु भी बन सकते हैं। प्रेमी जब सूरज चमकेगा तो दुनिया खुद-ब-खुद देखेगी।"

(कथानक - 29)
"बीती हुई यादें"

डॉ0 राम प्रकाश व डॉ० मदन मोहन जी का श्रीनगर (कश्मीर) जाना और उनका श्री महाराज जी से वार्तालाप:.....

वर्ष 1953 की घटना है, गर्मियों में श्री महाराज जी श्रीनगर (कश्मीर) में निवास कर रहे थे। डॉ0 राम प्रकाश एवं डॉ० मदन मोहन जी दोनों श्री महाराज जी से मिलने और कश्मीर देखने के बहाने देहरादून से चल पड़े।

श्री राम प्रकाश जी व मदन मोहन जी अमृतसर तक रेल से, उसके बाद हवाई जहाज़ से शीघ्र ही श्री नगर पहुँच गये। अकस्मात् इन दोनों के श्री नगर पहुँचने पर श्री महाराज जी बहुत खुश हो गये।

श्री मदन मोहन जी ने राम प्रकाश जी को आगे रखकर कश्मीर घूमने का प्रोग्राम बनाया और श्री महाराज जी से जिक्र किया।

श्री महाराज जी ने कहा-

"कश्मीर देख आओ भाई, तुम यहाँ आये तो हो ही.... मगर गुरूदेव के पास आने का मतलब कश्मीर देखना नहीं होता। खैर जब आये हो तो देख ही आओ कश्मीर भी।

डॉo मदन मोहन जी तो अपनी बात साफ नहीं पेश कर सके, पर राम प्रकाश जी ने तो स्पष्ट कह दिया--

"कि मैं तो इसी कारण कश्मीर आया हूँ।

इत्तिफाक से घटना ऐसी हुई कि जब यह दोनों श्री महाराज के पास बैठे हुए थे तो श्री महाराज जी ने पूछा-

"तुम्हारी दिनचर्या कैसी चल रही है? रोजगार कैसा है? गुजारा

ठीक से हो रहा है? दिन भर में क्या क्या कार्यवाही तुम लोगों की होती है? श्री मदन मोहन ने उत्तर दिया---

"हम तो कोई फिजूल खर्ची भी नहीं करते मगर हाथ तंग रहता है, सिनेमा भी महीने में एक बार देखते हैं।"

श्री महाराज ने जब सिनेमा देखने की बात सुनी तो इन पर मानों बरस पड़े और कहा--

"अरे! तुम इनके पास आकर भी सिनेमा तकदे (देखते) हो ? "यह तो उसको अपने पास भी बैठने नहीं देते, जो सिनेमा देखता है। यह सोचते थे कि तुम सुसंस्कृत परिवार के समझदार बच्चे हो । तुम लोग सिनेमा देखते हो यह तो बड़ा जुर्म है। सदाचारी जीवन की पहली शर्त है कि बनावटी व नुमायशी चीजों से परहेज करना। यह तुम ने क्या किया? खैर आगे ख्याल रखना, आगे फिर कभी सिनेमा नहीं देखना । "

डॉ० मदन मोहन जी ने इस घटना के बारे में मुझे इस प्रकार बताया--

"सुबह से शाम तक हमें डॉट पड़ती रही। सिनेमा के बारे में पूरी तन्वीह की हिदायत (सजगता का निर्देश) होती रही थी।"

श्री दीना नाथ सर्राफ जो हस्त शिल्प कला इम्पोरियम श्री नगर (Handi- craft Emporium) के मैनेजर थे, श्री महाराज जी के पास आये थे। इन दोनों को कश्मीर दिखाने के लिए श्री सर्राफ को श्री महाराज जी ने कह दिया।

श्री दीना नाथ सर्राफ की देख रेख में श्री राम प्रकाश व श्री मदन मोहन जी कश्मीर देख आये। लौटते हुए अभी रास्ते में ही थे और अपना अन्य प्रोग्राम बना रहे थे कि इन्हें देहरादून से मेरा (ओम कपूर का) तार मिला,

जो जगाधरी में श्री महाराज जी के आश्रम से Redirect (पुनः प्रेषण) सर्राफ जी के पते पर होकर आया था। तार में यह सन्देश था 'पिताजी की तबीयत खराब है, फौरन चले आओ।'

तार मिलते ही वहीं से सीधे एयरपोर्ट जा कर वापसी की सीट बुक करा ली और आकर श्री महाराज को सब स्थिति बता दी श्री महाराज जी ने केवल इतना ही कहा 'टिकट बुक कराने में इतनी जल्दी की क्या जरूरत थी? तुम कहते हो सीट बुक करा ली है, फिर तो जाना ही पड़ेगा।

उनके जाने में समय कम ही था, फौरन श्री महाराज जी रसोई में गये, एक पुरानी धोती वहाँ दिखाई दी, और किचन में कुछ सामान खाने का (जो कि अबोहर मण्डी के कोई प्रेमी लाये थे) कनस्तर में से उस पुरानी सी धोती पर भरपूर उल्ट दिया। ठीक वैसे ही जैसे कोई माँ अपने पुत्रों को बाहर भेजते समय दिल खोलकर सामान, उसके प्रयोग के लिए, बाँध देती है। श्री महाराज जी ने उन से बड़े प्रेम से इस प्रकार कहा---

“और कुछ तो इस समय आश्रम में हैं नहीं रास्ते में ये ही खा लेना।"

उस सामान में कुछ पिन्नियाँ, कुछ मटिठयाँ या थोड़े उड़द की दाल के लड्डू थे। श्री राम प्रकाश एवं मदन मोहन जी दोनों फौरन देहरादून के लिए वहाँ से चल दिए। देहरादून पहुँच कर देखा कि पिता जी की हालत बहुत खराब थी, तुरन्त डॉक्टर को बुलाया गया और बाकायदा इलाज चल पड़ा।

कुछ समय बाद पिताजी की हालत कुछ सम्भल गई और धीरे-धीरे ठीक हो गई। वृद्धावस्था के कारण रोग जल्दी घेर लेता है। श्री महाराज जी को खबर कर दी कि पिताजी की हालत खराब हो गई थी मगर कोशिश और आपके आशीर्वाद से कुछ हालत संभल रही है।

इस घटना में विशेष उल्लेखनीय बातें इस प्रकार है-

'सिनेमा देखने के बारे में प्रेमियों को मनाही करना। श्री प्रकाश व मदन मोहन जी बताते थे श्री राम महाराज जी का उपदेश सुनकर हमारा सिर नहीं उठता था। (शर्म के मारे) और काफी समय तक यह नसीहत होती थी।"

श्री महाराज जी के कोमल हृदय की बात बच्चों को मां जैसा प्यार दुलार करते थे, जो सामान भी सामने था, सब उन्हें साथ ले जाने के लिए बाँध दिया। श्री महाराज जी को पहले बताये बिना हवाई जहाज में सीट बुक कराना, यह प्रेमियों के लिए गलत कार्यवाही थी। इन प्रेमियों को श्री महाराज जी से आज्ञा लेकर वापसी का प्रोग्राम बनाना चाहिए था ।

(कथानक - 30)
"बीती हुई यादें"

वर्ष 1950 के वार्षिक सम्मेलन जगाधरी आश्रम की घटना है। यह प्रथम सम्मेलन जगाधरी में था उन दिनों जगाधरी एक छोटा सा कस्बा था और यमुना नगर भी कोई ज्यादा विकसित रूप में न था। दोनों की आबादी के बीच सुनसान जंगल था, सड़क पर चलते तांगों के घोड़ों की टाप की आवाज काफी दूर से ही सुनाई देती थी।

बाबू अमोलक राम जी को टेण्ट-छोलदारी की व्यवस्था सहारनपुर से ही करनी पड़ी थी। कुछ छोटे टेण्ट (तिकोनिया) छोलदारी थे। कुछ E.P Tents थे (बीच में बांस लगाकर दो चादरें लगाई जाती थी) यह टेण्ट आश्रम के बाहर साथ लगी जमीन पर लगाये गये थे इन टेण्टों में एक आफीसर टेण्ट था जैसा कि Survey of India या प्रायः टूरिंग ऑफिसर अपने साथ ले जाया करते थे।

इस ऑफिसर टाइप टेन्ट (Officer Type Tent) को डॉक्टर भगतराम खन्ना ने अपने प्रयोग के लिए घेर लिया। इसमें एक बैठक, एक शयन कक्ष और बाथरूम टॉयलेट की सुविधा थी और उसमें एक Camp-Cot (चारपाई) भी थी।

प्रेमी मुकन्द लाल तलवाड़ को श्री महाराज जी कुछ अधिक ही प्यार करते थे, चूँकि श्री तलवाड़ जी ने अपना सब कुछ श्री महाराज की आज्ञानुसार त्याग दिया था। और बड़ा ही साधारण जीवन अख्तियार कर लिया था। श्री महाराज जी को इस बात का ज्यादा एहसास था। अत्यधिक निकटता के कारण यह प्रेमी कुछ बिगड़े हुए स्वभाव के शिष्य माने जाते थे।

संगत में प्रायः दूसरे प्रेमियों के दोष देखने की आदत घर कर गई थी। इस आदत के प्रभाव वश कुछ प्रेमी इकट्ठे होकर कहने लगे कि हम लोग तो

साधारण टेन्ट में रह रहे हैं। दो-दो या तीन-तीन प्रेमी इकट्ठे भी रह रहे पुराल है ऊपर चान्दनी है, नीचे मगर भगत राम अकेले ऑफिसर टाइप या स्विस कोटेज (Officers Type or Swiss Cottage) में पूरे आराम से रह रहे हैं।

इस आवाज से काफी प्रेमी इकट्ठा हो गये और श्री तलवाड़ जी की अगुवाई में श्री महाराज जी के पास कुटिया में जा पहुँचे। श्री महाराज जी जब 10-15 प्रेमियों को मुकन्द लाल तलवाड़ की अगुवाई में अपनी ओर आते देखा तो कहने लगे---

"पता नहीं क्या मामला दरपेश है, जो यह सब इकट्ठे हो कर इनके पास आ रहे है" ?

श्री महाराज जी के पास पहुँचकर श्री मुकन्दलाल तलवाड़ बड़ी ऊँची आवाज में कहने लगे--

“श्री महाराज जी यह कौन सा इन्साफ है कि हम सब लोग साधारण चान्दनी (टेन्ट) में निवास करते हैं और डॉ0 भगत राम जी स्विस कोटेज (Swiss Cottage) में निवास करते हैं? फकीरों के दरबार में तो सब एक समान (बराबर-बराबर) हैं। यह कहाँ की मसावत (बराबरी) है, कहाँ का एतदाल (इन्साफ) है?

श्री महाराज जी ने तुरन्त फैसला लिया-

फकीर के दरबार में अमीर गरीब सब एक जैसे होते हैं एक जैसा बर्ताव होता है। अमीर गरीब छोटे बड़े का कोई भेद भाव नहीं होता, सब को एक निगाह से देखा जाता है। और आगे कहा--

"मुकन्द लाल! तू यह बता “तैं ने जिसके साथ प्यार किया है और जिसके वास्ते तू यहाँ आया है वह तो सारी रात खुले आसमान के नीचे

तारों की छाओं में बिता देते हैं।"

प्रेमी मुकन्द लाल का मुँह खुला का खुला रह गया। अन्य सभी भी सिहर उठे, आँखों में आँसू आ गये। कुछ कहते नहीं बना। मुकन्द लाल जी का दिल भर आया। वे अपने टेन्ट में जाकर रोने लगे।

श्री महाराज जी ने किसी को भेज कर उन्हें बुलवा भेजा और उसे समझाने लगे--

"प्रेमी यह विचार करने का विषय है, रोने का नहीं। तुम्हें गुरू में ऐसी कौन सी बात दिखाई दी जो तुम ऐसा समझ बैठे। हर प्रेमी कमजोरी में खड़ा है, उससे तुम क्या आशा करते हो।

कुद देर बाद सभी प्रेमियों को जाने की आज्ञा दी और सभी अपने स्थान पर चले गये और अपना अपना काम करने लग गये।

इस प्रसंग द्वारा यह उपदेश श्री महाराज जी ने हमें दिया---

कि दूसरे के दोष ढूँढने के बजाय हमें अपनी कमजोरी को दूर करना चाहिए और अपने गुरू या सत्गुरू की रहनी को आर्दश मानकर अपना सुधार एवं उद्धार करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी में हमारा कल्याण है।

(कथानक - 31)
"बीती हुई यादें"

श्री सत्गुरू देव महाराज जी ने अपने मुखार बिन्द से भक्त सुन्दर दास की गाथा इस प्रकार से सुनाई थी--

"(नवम्बर 1753 की घटना है):-

"चार-पाँच सौ साल पुरानी गाथा है। काशी नगरी में भक्त सुन्दर दास नाम के संस्कृत के एक बड़े विद्वान और मेधावी पुरूष रहते थे। बचपन से ही सुन्दरदास जी का हृदय धार्मिक वातावरण में पला था। और इस तरह से धार्मिक संस्कारों से यह मेधावी पुरूष काफी सुसंस्कृत थे। उसके हृदय में चाह उठी कि कोई आत्मदर्शी पुरूष खोजा जाए जो आत्म-ज्ञान प्राप्ति में उसे कुछ सहायता दे सके। पता चला कि राजपूताने में दादू दास नाम से एक परम सन्त वास करते हैं और वह आध्यात्म ज्ञान में इस वक्त सर्वोपरि हैं। भक्त सुन्दर दास ने विचार किया कि वह इन सन्त के दर्शन हेतु अवश्य जावेगा और यदि उपयुक्त समझा तो उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरू बनायेगा।

एक दिन अच्छा अवसर जानकर भक्त सुन्दर दास जी घोड़े पर सवार होकर राजपूताने की तरफ चल पड़े। संत दादूदास के गाँव के पास जब वह पहुँचे तो उन्होंने अपने घोड़े से उतर कर पैदल ही उस गाँव में दाखिल होने का विचार किया। अपने घोड़े को अपने नौकर के सुपूर्द करके वह पैदल ही संत दादूदास के निवास स्थान की ओर अग्रसर हुए। उधर संत दादूदास को भान हुआ कि एक बड़ा ही मेधावी विद्वान उसकी शरण में आ रहा है। वह अपने स्थान से उठकर सुन्दरदास को रास्ते में ही मिलने चल दिए और अपना परिचय न देते हुए सुन्दरदास जी से रास्ते में ही पूछा-

ऐ भद्र पुरुष तुम कहाँ जा रहे हो?"

भक्त सुन्दरदास ने कहा--

"मैं सन्त दादूदास से मिलना चाहता हूँ। अगर आप उनका पता मुझे बता दे तो आपकी बड़ी कृपा होगी।"

इतना सुनकर संत दादूदास ने एक ऐसी अटपटी सी बात कही जिसे सुनकर सुन्दरदास को बड़ा अजीब सा लगा। इस पर संत दादूदास ने कुछ मखौल सा सुन्दरदास से किया जिस पर सुन्दरदास को गुस्सा आ गया और उन्होंने चट से एक थप्पड़ सन्त दादूदास के रसीद कर दिया। संत दादूदास ने थप्पड़ खाने के बाद बड़ी आजज़ी से सुन्दरदास को संत दादूदास के निवास का पता बतला दिया और आप दूसरे रास्ते से जल्दी ही जाकर अपने निवास स्थान पर पहुँच गये। पूछता-पाछता भक्त सुन्दर दास संत दादूदास के निवास पर पहुँचा तो देखता क्या है कि भक्त मंडली बैठी है, भक्त लोग चारों तरफ इकट्ठा हैं और संत दादूदास उनके मध्य बैठे सबसे धर्म चर्चा कर रहे हैं। भक्त सुन्दर दास यह देखकर अवाक रह गया कि जिस पुरुष को उसने रास्ते में थप्पड़ मारा था, वह ही साक्षात् संत दादू दास है। वह एक कोने में बैठ गया और इस दुखद घटना से उसको बड़ी परेशानी हुई कि मैं जिन शख्स को अपना गुरु बनाने आया हूँ उससे मैंने यह क्या अशोभनीय व्यवहार किया है। भक्त सुन्दर दास अपने अन्दर ही अन्दर बड़ी सोच-विचार और ग्लानि में था। और मुंह से कुछ बोल नहीं पा रहा था। संत दादूदास भक्तों के बीच बैठे हुए जब उनके प्रश्नों के जवाब दे चुके तो भक्त सुन्दर दास की तरफ मुखातिब होकर बोले:--

"सुन्दर दास तुम काशी से गुरू की तलाश में इतनी दूर आये हो जिस गुरु के चरणों में तुमने अपने सिर धड़ की बाजी लगानी है उनको तो आजमाना ही चाहिए। मामूली सी दो पैसे की हाँडी भी कुम्हार से जब

आदमी लेने जाता है तो उसको भी कई बार हाथ से ठोंक कर देखता है कि वह फूटी हुई तो नहीं हैं। अगर तुमने अनजाने में अपने होने वाले गुरू के एक थप्पड़ रसीद कर दिया तो ऐसा कौन सा पहाड़ गिर गया। जिसकी वजह से तुम अन्दर ही अन्दर इतने परेशान हो। आओ मेरे नजदीक आओ--

"मैं तो तुम्हें बहुत पहले से अपनाने के लिए व्याकुल था।" इसके बाद दास गुरू दादू दास के परम शिष्य हुए और बड़े ही गुरू भक्त हुए।

उन्होंने अपने वचनों में लिखा है-

"और ही संत सबै सिर ऊपर, सुन्दर के उर हैं गुरू दादू।"

(कथानक -32)
"बीती हुई यादें"

श्री गुरुदेव महाराज समता योग आश्रम में जब सम्मेलन के आस-पास पहुँचते थे तो दिन भर बैठे रहते थे। दिन-भर बैठने से आदमी के पैर जुड़ जाते हैं इसलिए श्री महाराज जी पैरों को लम्बा करके बैठ जाते थे। जब श्री महाराज जी फॉ को लम्बा करते थे तो आस-पास बैठे हुए लोग आगे बढ़कर उनके पैरों को दबाने की कोशिश करते थे ताकि श्री महाराज जी की थकावट दूर हो जावे। क्योंकि जब भी कोई आदमी एक आसन पर ज्यादा देर तक बैठता है तो वह थक जाता है। आम आदमी के साथ यह बात है लेकिन फकीर के साथ ऐसा नहीं है। फकीर कभी नहीं थकते। खैर, उन्होंने पैर लम्बे किये और लोग उन्हें दबाने लगे।

श्री महाराज जी तो सब लोगों के अन्तर की बात को जानते थे कि ये लोग किस नीयत से ऐसा करते हैं। अगर उनकी नीयत ऐसी होती कि श्री महाराज जी को तकलीफ है तो पैर दबाना, अच्छा है, लेकिन नहीं। उनकी नीयत में यह होता था कि हमारा कल्याण हो जाएगा, श्री महाराज जी हमारी कुछ मुरादें (कामनाएँ) पूरी कर देंगे। इस भाव से वे महाराज जी के पैर दबाने लगते थे। श्री महाराज जी ऐसे लोगों से कहते थे:-

“ओ प्रेमियों, इन लकड़ियों को दबाने से तुम्हारा कुछ नहीं बनेगा। अगर तुम्हें कुछ प्राप्त करना है तुम ये जो बात कहते हैं उसको अपने जीवन में लाओ ओर उसके माफिक आचरण करो तब तुम्हारा काम बनेगा। अगर तुम 'ये' जो बात कहते हैं उसको न सुनकर यह चाहते हो कि 'इनके' पैर दबाने से तुम्हारा काम हो जाएगा तो तुम मुग़ालते में हो, इस ख्याल को त्याग दो।"

भाव कहने का यह है कि जो लोग पैर दबाने वाले थे- उनके दिमाग में इस प्रकार की बातें थीं महाराज के पैर दबाने से 'वे' खुश हो जाएगे और हमें आशीर्वाद दें। जिससे हमारा काम बन जाएगा।

(कथानक -33)
"बीती हुई यादें"

वर्ष 1953 ई0 का जिक है कि श्री सत्गुरुदेव जी महाराज को देहरादून, मोहिनी रोड के एक बंगले में ठहरा कर, उनके एकान्त वास के लिए स्थान ढूंढने की कोशिश हो रही थी। सभी प्रेमी इस बारे में चिन्तित थे और तलाश का सिलसिला जारी था, कई स्थान उस उदेश्य से देखे भी गये थे।

एकान्त स्थान की तलाश के सिलसिले में राजपुर कस्बे के पास साल के जंगल की पहाड़ी चोटी पर, 'सरकण्डा देवी' का मन्दिर स्थित है, उसे देखने जाने का प्रोग्राम बनाया गया। इस मन्दिर को जाने के लिए मसूरी रोड पर श्री श्रद्धानन्द आश्रम (बंगाली आश्रम) की ओर से एक रास्ता है। चारो ओर साल का घना सुनसान जंगल है। सुनसान रास्ते पर चलते हुए हमने देखा कि हम सब महाराज जी से बहुत पीछे छूट जाते थे, उस पहाड़ी रास्ते पर भी श्री महाराज जी हम लोगों से बहुत आगे निकल जाते थे।

जब उस पहाड़ की चोटी पर स्थित उक्त मन्दिर पर पहुँचे तो क्या देखा, कि पास ही एक जगह पर खून पड़ा है, लगता था कि किसी पशु की बलि दी गई होगी। श्री महाराज जी ने उस खून को देखकर हमसे पूछा--

"प्रेमियों, तुम इन फकीरों को यहाँ ठहराना चाहते हो, यह गलत जगह है 'यह' यहाँ पर नहीं ठहर सकते। यहाँ आस पास के भ्रष्ट बुद्धि वाले देहाती लोग आकर जानवरों की बलि चढ़ाते हैं। यह स्थान दूषित है।"

फकीर लोग ऐसे स्थानों पर नहीं ठहरा करते। थोड़ी देर भी वहाँ रूके बगैर हम सब श्री महाराज जी के साथ वहाँ से वापिस चल कर मोहिनी रोड देहरादून आ गये ।

कोई दूसरी जगह तलाश की जावे, ताकि श्री महाराज जी का चौमासा एकान्त वास व्यतीत हो सके, इसलिए अगले दिन फिर प्रोग्राम बनाया गया। पता चला था कि गुनियाल गाँव में (जहाँ के लिए 'जाखन' राजपुर रोड से भी एक रास्ता जाता है।) किसी अंग्रेज का बंगला है। इस बंगले को श्री जोधा मल कुठियाला टिम्बर मर्चेन्ट ने ले लिया था। उनके मुन्शी से उस बंगले की चाबी ले कर उसे देखा गया। यह जगह बड़ी शान्त, एकान्त, पुर-सुकून थी। चारों तरफ अच्छे अच्छे लहलहाते लगे थे। खुला लान भी था। बंगले का बराण्डा काफी खुला था। कमरों की खिड़की व रोशनदान भी बड़े-बड़े व खुले खुले थे, जो कि बराण्डे में खुलते थे। कमरों की खिड़कियों आदि की बनावट ऐसी थी कि ज्यादा से ज्यादा हवा से होकर आजा सके।

एक कमरा जो खोला गया तो देखा कि फर्श लकड़ी का है, दीवारें लकड़ी की है और अन्दर की छत Ceiling भी लकड़ी की बनी है। दीवार एवं छत की लकड़ी पर नक्काशी का काफी काम हुआ था, जैसा कि सहारनपुर अथवा कश्मीर में अखरोट व शीशम की लकड़ी पर प्रायः किया जाता है। कहा नहीं जा सकता कि उक्त लकड़ी की काम कश्मीर से या सहारनपुर से काराया गया था, परन्तु यह निश्चित है कि वह काम नक्काशी का बड़ा ही सुन्दर और लुभावना था। कमरों में काफी फर्नीचर भी था जैसे कुछ मेज कुर्सी, दीवान आदि। सर्दियों के दिनों में कोयला जलाने हेतु अंगीठी भी बनी थी और धुआं ऊपर चिमनी के रास्ते बाहर निकालने का प्रबन्ध भी था। इस प्रकार के कई कमरे और भी उस बंगले में बने थे।

हमने तो केवल एक ही कमरा खोल कर अन्दर से देखा था। बराण्डे के पश्चिम की ओर एक हवा घर भी बना हुआ था। जो कि बल्लियों और तख्तों द्वारा बना था, छत भी लकड़ी की बनी थी। इस हवाघर के नीचे,

बिल्कुल नीचे, एक नाला था जो कि बरसाती नाला था, केवल बरसात का ही पानी उसमें बहता था मगर बरसात में भरापूरा बहता था। यह नाला खडडे में था जिस की ढलान बहुत तेज Steep थी।

कुल मिलाकर यहाँ का दृश्य बहुत ही सुन्दर, मन का लुभाने वाला गम्भीर व शान्त था। इस सब वातावरण आदि को देख कर श्री महाराज बोले-

"तुम इनको कहाँ ले आये हो?"

मैंने श्री महाराज जी से प्रार्थना की ---

"महाराज जी, इस कमरे से फर्नीचर आदि सब हटा लिया जायेगा, यह जगह आप के लिए खुली कर दी जावेगी। इस बात को सुनकर श्री महाराज जी ने फिर एक निगाह डाली और कहने लगे-

"चलो, प्रेमी, वापिस चलते हैं।" हम सब वापिस चल दिए। रास्ते में मैं ने श्री महाराज जी से पूछा महाराज जी, आप ने इस स्थान के बारे में कोई टिप्पणी (Comment) नहीं दी, यह स्थान कैसा लगा? गुरूदेव ।"

श्री महाराज जी ने कहा-

ओ प्रेमी ! तू इनको नहीं जानता, ये ऐसे महलों में नहीं ठहर सकते यह तो पसन्द और ऐय्याश तबीयत के लोगों के ठहरने लायक है। फकीर ऐसे स्थान पर नहीं ठहरा करते। अगर यह फकीर ऐसे स्थान पर ठहरने लगे, तो तुम लोग तो आसमान पर उड़ने लगोगे ।

इनके वास्ते तो टीन पोश, खस्ता (जराजर) हालत का मकान हो तो ठीक है, अगर न मिले तो तम्बू डाल लेंगे, उसमें गुजारा कर लेंगे।"

उपरोक्त घटना से साफ पता चलता है कि श्री महाराज जी कोई भी ऐसा काम नहीं करते थे, जिससे आम लोगों में कोई गलत फहमी हो, गलत उदाहरण प्रस्तुत हो, उन्हें ठेस लगे और आने वाले वक्त में फकीर को गलत समझा जाने लगे।

(कथानक -34)
"बीती हुई यादें"

वर्ष 1953 की ग्रीष्म ऋतु का समय था। श्री सतगुरु देव जी महाराज, संगत देहरादून के आग्रह पर हल्द्वानी से एकान्त वास और चौमासा (चतुर्मासा) व्यतीत करने के लिए देहरादून आये थे। मैं हल्द्वानी से श्री महाराज जी को साथ ले आया था। श्री महाराज जी के ठहरने के लिए राजपुर के करीब केलाघाट स्थान चुना गया। वहाँ पर एक पत्थरों के बने पर एक टेन्ट लगा दिया गया और वहाँ उन्हें ठहरा दिया गया था।

वहाँ श्री महाराज माह मई से मध्य सितम्बर 1953 तक ठहरे थे। महाराज जी इसी टेन्ट में निवास कर रहे थे। जो कोई प्रेमी, सज्जन, भद्र पुरूष वहाँ आता था। श्री महाराज जी के आगे लम्बा लेट कर दण्डवत प्रणाम करता था, और जब वापिस जाता था, तो पीठ न दिखा कर उल्टे पाँव जाता था, टेन्ट के बाहर पहुँच कर ही मुड़ता था। यह क्रिया हर कोई जितनी बार भी टैन्ट में श्री महाराज जी के पास आता था, उतनी बार ही दोहराता था। यह परिस्थिति देख कर मैंने श्री महाराज जी से एक दिन प्रश्न किया,--

“महाराज जी, क्या यह आप का कोई अनुशासन या नियम है कि जो भी प्रेमी आप के पास आता है, लम्बा लेट जाता है, प्रणाम करता है, और जितनी बार भी कोई आप के पास आता है यही क्रिया चलती है? ऐसा मैंने देखा है।

"यह सुनकर श्री महाराज जी मुसकराये और कहने लगे---

“प्रेमी, यह कायर बुद्धि लोग हैं मत्था टेक कर ही कल्याण चाहते हैं।

ये (महाराज जी) इनसे जो बात कहते हैं उनके मुताबिक (अनुसार) नहीं चलते। न ही बात को समझते हैं, न उस पर विचार करते हैं और न ही चलना चाहते हैं,

"केवल मत्था टेक कर अपनी कामनाओं को पूरा करना चाहते हैं। इसतरह ये कायर बुद्धि और मत्था टेकु लोग हैं।"

श्री महाराज जी की यह बात सुनकर मैं अच्छी तरह समझ गया कि श्री महाराज जी का वास्तविक उद्देश्य यही है, कि उनके वचनों का पालन करना चाहिए तभी कल्याण हो सकता है।

यदि हम उनके वचनों का सही अर्थो में पालन नहीं करते, और किसी प्रकार का दिखावा, प्रदर्शन आदि स्वांग करते हैं तो यह उन महाराज जी को कतई पसन्द नहीं है।

(कथानक - 35)
"बीती हुई यादें"

वर्ष 1951 ई0 का जिक्र है। श्री समता प्रकाश ग्रन्थ का पुराने लिखे हुए लेखों से श्री दीपचन्द्र खजांची के बंगले में (देहरादून नगर स्थित) मिलान किया रहा था। यह मिलान का काम पं० रामजी दास गुरूदासपुर निवासी, स्वयं एवं भगत बनारसी दास जी कर रहे थे।

प्रेमी राम जी दास ने मुझे यह घटना इस प्रकार सुनाई थी। जब ग्रन्थ की प्रतियों का मिलान व अवलोकन हो रहा था, श्री महाराज से पूछा । श्री सत्गुरू देव जी महाराज ने श्री समता प्रकाश ग्रन्थ की महानता के बारे में इन दो प्रेमियों

इस पर इन दोनों प्रेमियों ने कहा--

"यह कृति तो महान कृति है और बड़े ऊँचे ज्ञान का भण्डार है।"

इस पर श्री महाराज जी ने Explain (बताया) किया। "आया बीसा (बीसवीं सदी) न रहा मुहम्मद, न रहा ईसा।"

श्री भगत बनारसी दास जी ने श्री महाराज जी से पूछा, यह कौन सी बुझारत (पहेली) आप ने बुझी है ? हजरत मुहम्मद को गुजरे हुए 1400 साल हो गये हैं और हज़रत ईसा को 2000 वर्ष हो रहे हैं। ये दोनों हस्तियाँ इतने सालों से नहीं हैं, आप आज यह कह रहे हैं कि वे अब नहीं हैं।"

इस पर श्री गुरूदेव जी बोले--

"जिन के पैरोकार और उम्मत (अनुयायी) हैं, तो समझो कि वे महापुरूष आज भी जिन्दा है । आज तमाम ईसाईयों में और मुसलमानों में उनके हज़रतों की सिफ्तें (गुण) नहीं पायी जाती, बल्कि गुणों की जगह पर बहुत

से दोष आ गये हैं।"

इससे पता लगता है कि उनकी उम्मत (अनुयायी) ने उनको भुला दिया है, और अपने जीवन से नकार दिया है। उन बुजुगों की बात को सही मायनों में मानने वाले और उनके उसूलों पर चलने वाले नहीं रहे, महज रिवाज पीटने वाले रह जाते हैं। तब तुम उन बुजुर्गों का खात्मा ही समझो। इस तरह से ईसा और मुहम्मद साहब का खात्मा हो गया है।"

इस पर भगत बनारसी दास व पं० रामजी दास ने फिर सवाल किया,

"ये खत्म हो गये, तो फिर अब क्या होगा?"

श्री महाराज जी बोले, ---

"अब सब देश देशान्तर में समता ही समता होगी।"

श्री भगत जी ने पुनः पूछा-

"महाराज जी, यह कैसे होगा?" श्री महाराज जी ने खुलासा किया कि---

"समता की तालीम किसी भी धर्म जाति या व्यक्ति विशेष पर आधारित नहीं हैं, यह तो एक विश्व-व्यापी उसूल हैं, जो भी इस उसूल को अपनावेगा, वह उपने विचारों व कर्मों से अपने जीवन को ऊँचा उठा ले जावेगा और अपना कल्याण करेगा और दूसरों के मुकाबले अपने को बुलन्दी पर पावेगा।

इस उसूल (सिद्धान्त) के पालने में किसी भी खास किस्म के अभ्यास ट्रेनिंग व कवायद की जरूरत नहीं, बल्कि जब इन उसूलों को अपने जीवन में धारण करने वाले होंगे तो अपने जीवन को बहुत ऊँचाई पर ले जाने वाले बन जायेंगे ।

यह ही समता का स्वरूप है। इस तरह आप अपने के प्यारे भी बनोगे

और उनके मानने वाले भी बनोगे।

आज पहले जमाने की तरह मजहब के अन्ध विश्वास कायम नहीं रह सकते। देखने में आ रहा हैकि एक ही परिवार में एक सदस्य आर्य समाजी है, तो एक सनातनी है, एक दैव समाजी है, तो एक मढ़ी मसान का उपासक है। हर इन्सान अपनी बुद्धि को ठहराने के लिए पक्की दलील चाहता है। समता का सिद्धान्त बा-दलील (तर्क पूर्ण) है और ऐन बिल्कुल कुदरत के मुताबिक है।

उपरोक्त वार्तालाप से पता लगता है कि श्री महाराज जी का सारा सिद्धान्त कुदरती जीवन पर आधारित है। ग्रन्थ श्री समता विलास के समता विधान नामक प्रकरण के अनुसार जो एक ईश्वर (गुरू) को सब प्राणियों में नहीं देखता वह ईश्वर की हस्ती से मुनकिर है (नहीं मानता), जो प्रेम करके दुःखी जीवों की सेवा नहीं करता वह ईश्वर के हुक्म से मुनकिर है।

(कथानक - 36)
"बीती हुई यादें"

वर्ष 1953 ई0 के माह मई से माह सितम्बर की अवधि का जिक्र है कि श्री सत्गुरूदेव जी महाराज केलाघाट राजपुर देहरादून में विराजमान थे। शाम के समय एक दिन श्री गुरूदेव जी को अच्छे मूड में देखकर मैंने उनसे सवाल किया कि महाराज जी जब आप मोहिनी रोड देहरादून में ठहरे हुए थे, तब एक दिन उस बंगले से कुछ दूरी पर बहने वाली नहर पर नहाने के लिए मैं गया था।

वहाँ एक नौजवान लड़का, नहाने की जगह से थोड़ी दूर पर योग आसन का अभ्यास कर रहा था। चूँकि मुझे योगासन की कुछ महारत थी, मैने उसे देखकर महसूस किया कि वह गलत तरीके से योगाभ्यास कर रहा है, कहीं किसी परेशानी का शिकार न हो जावे। जब वह नौजवान अपनी क्रिया पूरी कर चुका, मैंने उसकी ओर मुड़ कर उसे सम्बोधित करते हुए कहा---

“ऐ मेरे नौजवान दोस्त, अगर आप बुरा न माने तो मैं आपसे योगासन के बारे में कुछ बताना चाहता हूँ। अगर आप गलत तरीके से योगासनों का अभ्यास करेंगे तो नुकसान उठा सकते हैं।"

उस नौजवान ने मेरी बात को धैर्य से ध्यान से और आदर भाव से सुना। अन्त में मेरे प्रति आभार प्रकट किया और मेरा परिचय जानना चाहा। मैंने उसे बतलाया कि यहाँ से थोड़ी दूर पर एक महात्मा ‘श्री मंगत राम' जी पधारे हुए हैं, मैं उनके पास दर्शन हेतु आया हूँ और प्रातः स्नान करने की इच्छा से यहाँ पर आया हूँ।

उस नौजवान ने कहा---

“हाँ ये बड़े ऊँचे सिद्ध महात्मा हमारे पिता जी ने बताया था, कि जब

ये पेशावर में उनके साथ एक दफ्तर में कार्य करते थे, तो वहाँ पर इन्होंने कोयलों की जलती हुई अंगीठी में पैर रख दिया था, पर वह पैर जला नहीं था।"

इसके बाद उस नौजवान के साथ उसके पिताजी से मिलने के लिए मैं उसके घर गया, वहाँ मुझे उसके पिताजी ने बताया कि उक्त घटना सही है। वह सज्जन श्री गुरूदेव महाराज का शिष्य नहीं था। परन्तु महाराज जी के प्रति बड़ी सहानुभूति और श्रद्धा रखता था।

उपरोक्त नौजवान व उसके पिता जी से हुई बात-चीत के बारे में, मैंने श्री सत्गुरूदेव जी महाराज से इस प्रकार कहा---

"महाराज जी यदि आप के किसी शिष्य ने यह बात कही होती, तो मैं मान लेता कि मुरीद अपने पीरों की बात बढ़ा चढ़ा कर बतलाते हैं, परन्तु वह सज्जन तो आप के शिष्य भी नहीं है, उन्होंने जैसा देखा वैसा बतलाया।"

यह सब सुनकर महाराज जी की दशा उस समय देखने लायक थी। श्री महाराज जी अपनी गर्दन इस तरह इधर उधर करने लगे, जैसे किसी की कोई गुप्त बात (रहस्य) प्रकट हो जाने पर, उसकी दशा हो जाती है।

कुछ देर बाद श्री महाराज जी इस प्रकार बोले और अपनी सफाई देने लगे--

"ओम ! प्रेमी, उस वक्त कुछ ऐसे हालात आ गये थे और उन लोगों ने कुछ ऐसी बातें कही थी, कुछ वाक्यात (घटनाएँ) ऐसे पेश कर दिए जो कि वहाँ पर ईश्वर विश्वास को खत्म करने के भाव लिए हुए थे।"

इनकी तरफ से ऐसा कुछ नहीं किया गया। उस समय ईश्वर प्रेरणा से जो घटना घटी वह तुम्हें बताते हैं। यह सब आप से आप ही घटित हो गया, यह बात ठीक है कि जलती अंगीठी में पैर रखा गया और वह जला नहीं, परन्तु इन्होंने इसमें कुछ नहीं किया। 'ये' तो कोई दूसरी ताकत थी जिसने यह काम किया।"

साथ ही श्री सत्गुरू महाराज जी ने गंगोठियां सम्मेलन के अवसर का जिक्र किया, जब आग के अंगारे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय नीचे गिर गये थे और अंगारे ले लाने वालों को भी इस बात का पता नहीं चला। वह अंगारे जलती हुई दशा में ही वहाँ पड़े रहे, इसके तुरन्त बाद श्री महाराज जी नंगे पैर उस रास्ते से गुज़रे इन गिरे हुए अंगारों पर श्री महाराज जी का पैर पड़ा और वह पैर जल गया। बाद में कई दिनों तक उस जले पैर पर पट्टी बंधी रही एवं इलाज होता रहा।

इसके बाद महाराज जी कहने लगे,---

“इनका पैर पेशावर में तो आग से नहीं जला, फिर गंगोठियां सम्मेलन में क्यों कर जल गया?"

यह सब तो परमात्मा का ही कार्य है, इसमें इनकी कोई बड़ाई नहीं है।

उपरोक्त आख्यान से स्पष्ट पता चलता है कि सत्गुरू देव जी महाराज में, उनके अन्दर व बाहर कितना निर्मान भाव था, यदि कोई चमत्कारी कार्य घटित हो भी गया, तो उससे श्रेय प्राप्त करने का कोई भाव इनके अन्दर कभी नहीं आया।

(कथानक - 37)
"बीती हुई यादें"

यह घटना क्रम वर्ष 1952 ई0 के सम्मेलन के दौरान का ही है। ग्रन्थ श्री समता प्रकाश का हिन्दी रूपान्तर का कार्य चल रहा था। हिन्दी की दुरूस्ती के लिए मैं स्वंय एवं स्व० श्री जगदीश प्रकाश जी गुप्ता Head of Deptt. Statistics and Numerology विभागाध्यक्ष डी०ए०वी० कॉलेज देहरादून इस पवित्र कार्य में व्यस्त थे।

जगाधरी आश्रम के अन्तर्गत पश्चिम की ओर खड़े शीशम के पेड़ों के नीचे हम दोनों यह कार्य कर रहे थे। श्री सत्गुरूदेव जी महाराज का यह आदेश था कि हम दोनों से मिलने के लिए कोई प्रेमी न आये, ये दोनों प्रेमी जरूरी काम कर रहे हैं। इस हिन्दी रूपान्तर सम्बन्धी पवित्र कार्य में इतना व्यस्त था कि मुझे यह ध्यान भी नहीं रहा कि मुझे पेशाब आ रहा है। काफ़ी देर तक तो मैं पेशाब के प्रेशर (दबाव) को रोके बैठा रहा, जब असहा हो गया तो मैं तुरन्त ही आश्रम की दीवार को लांघ कर बाहर दूसरे खेत पर चला गया। शीघ्रता से मूत्र त्याग कर उसी प्रकार वापिस आश्रम की दीवार लांघ कर अन्दर आ गया और पूर्ववत् अपने काम में लग गया। फौरन अन्दर से एक आवाज आई कि तेरे से गलती हुई है।"

आश्रम के नियमानुसार, आश्रम की दीवार को ऊपर से लांघना मना है। मैं तुरंत ही श्री सत्गुरूदेव जी महाराज के पास पहुँचा, और उनसे प्रार्थना की कि महाराज जी मुझसे अनजाने में बहुत बड़ी ग़लती हो गई है। श्री महाराज जी ने पूछा--

"क्या हुआ प्रेमी?" मैंने सब हाल ज्यों का त्यों महाराज जी के आगे निवेदन कर दिया। पुनः

(कथानक -37)
"बीती हुई यादें"

मैंने प्रार्थना की--

कि मैं ग्रन्थ के कार्य में इतना ज्यादा तल्लीन था कि मैं दीवार लांघ कर बाहर चला गया। दीवार लांघना अपराध है, इस बात का ध्यान नहीं रहा आपकी आज्ञानुसार आश्रम की सीमा लांघना मना है। गुरूदेव, मैं गुनहगार हूँ। इस गुनाह के लिए जो भी सजा आप निर्धारित करेंग, मैं वह सज भुगतुंगा।

श्री महाराज जी ने इस पर मुझसे पूछा--

"क्या तुम वाकई महसूस करते हो कि तुम से अपराध हुआ है और कि तुमको सजा मिलनी चाहिए?"मैंने हाथ जोड़कर अर्ज की-

"महाराज जी आपके आदेशानुसार आश्रम की सीमा को लांघना मना है, इस अपराध की सजा मुझे मिलनी ही चाहिए।

इस पर श्री महाराज ने अपना निर्णय सुनाया अच्छी बात है, अभी तुम जाओ, अपना काम करो, सजा तुम्हारे वास्ते सोची जायेगी फिर बता देंगे।"

मैं प्रणाम करके चुप चाप लौट आया और ग्रन्थ (श्री समता प्रकाश) के कार्य में लग गया। दूसरे दिन मैंने श्री सत्गुरू महाराज जी से प्रार्थना की मुझे मेरी सजा बता दी जावे ताकि मैं उसे भुगतने के लिए तैयारी करूँ।

श्री महाराज जी ने कहा,-

"हाँ ठीक है, सजा अभी (निर्णय) हो रही है।"

इस प्रकार तीन चार दिन और बीत गये मैं इस बात को भुला नहीं सका बिल्कुल भी मैंने एक दिन पुनः श्री सत्गुरूदेव जी महाराज से इस बारे में प्रार्थना की, श्री महाराज जी बोले---

“ओम! तेरे लिए यह काम करना बहुत बड़ी गलती थी, इसलिए तुम्हारे लिए इसकी यही सजा दी जाती है कि आगे से तुम्हारे द्वारा यह कार्य नहीं होना चाहिए।” बस इतनी बात कह कर श्री महाराज ने बात खत्म कर दी।

इस घटना से यह सबक (शिक्षा) मिलता है कि आखिर तीन चार दिन तक श्री महाराज जी ने अपना निर्णय क्यों कर रोके रखा, यह निर्णय तो वह पहले दिन भी बतला सकते थे। इसके पीछे उद्देश्य श्री महाराज जी का केवल मुझे पश्चाताप करने का समय देना था। यह सजा नहीं थी, बल्कि ग़लती का एहसास कराना था, कि गुरू - आज्ञा का उलंघन किसी भी अवस्था में नहीं होना चाहिए था।

(कथानक - 38)
"बीती हुई यादें"

केलाघाट (तुलतुलिया चश्मा) राजपुर देहरादून का जिक्र है कि सितम्बर सन् 1953 में श्री सत्गुरूदेव जी महाराज एकान्त वास का समय व्यतीत करके देहरादून जाने को तैयार हो रहे थे, वहाँ से विकास नगर होते हुए जगाधरी जाने का प्रोग्राम था।

टेण्ट जो श्री सत्गुरूदेव जी महाराज की रिहायश के लिए लगाया गया था, उसको उखाड़ने वाले पहुँच गये थे और अपना काम उन्होंने शुरू कर दिया था। जब श्री सत्गुरूदेव जी महाराज ने टेण्ट में बैठे हुए सब सिलसिला देखा, तो कहने लगे---

""अब यहाँ से आगे चलने का प्रोग्राम बन गया है।'

श्री सत्गुरूदेव जी महाराज के पास एक 'बिग बैन' टाइम पीस (फेवर ल्यूबा कम्पनी) की रखी हुई थी, श्री महाराज जी ने उस पर हाथ रखा, छुआ और कहने लगे,--

'यह घड़ी भी एक लम्बे काल तक सेवा करती रही है। इन फकीरों के तप में इस घड़ी का भी बड़ा योगदान रहा है।

फिर वहाँ से उठकर श्री सत्गुरूदेव जी महाराज उस स्थान की सीमा पर लगे हुए आम के पेड़ो के पास गये और एक एक पेड़ को छू कर, उन पर हाथ फेरा और बोले---

“यह तपस्वी भी इन फकीरों की खिदमत (सेवा) करते रहे। जंगली जानवरों से सुरक्षा के प्रेमियों ने इन पेड़ों को भी कांटेदार तार चुभा ताकि एक बाड़ बन जाये और बकरी एवं अन्य जंगली जानवरों से यह शरीर सुरक्षित रह सके। आप सब प्रेमीजन इन्हें क्षमा करें। आप के

शरीर में यह कांटेदार तार लगाया गया है, आप को बड़ी तकलीफ हुई होगी।"

इसके बाद श्री सत्गुरूदेव जी महाराज पास ही पड़े पत्थरों पर बैठ गये और टेण्ट उखड़ने लगा।

श्री महाराज जी उन सभी चेतन व अचेतन प्राणियों के प्रति सम्वेदना रखते थे जो उन के मार्ग में सहायक होते थे। जिस किसी को भी उनके कारण तनिक सा भी कष्ट होता था, उस कष्ट का उनको बड़ा अहसास होता था। यह बात स्मरणीय है कि फ़कीरों का जीवन सब को सुख देने की खातिर होता है, कष्ट देने की नहीं।

दुनियादार संसारी लोग इस बात को नहीं समझतें, और न ही उसका कोई अहसास उन्हें होता है। स्टेपल्स (तार को पेड़ आदि में फिक्स करने वाली कीलें किसी पेड़ में लगायी गई तो क्या हुआ ?

पर फ़कीरों का नजरिया ऐसा नहीं होता। सभी चेतन और अचेतन प्राणियों के सुख दुःख का वे अनुभव करते हैं।

(कथानक -39)
"बीती हुई यादें"

अक्टूबर सन् 1950 का पहला जगाधरी सम्मेलन, जिसके इन्तज़ाम के वास्ते श्री सद्गुरूदेव महाराज ने बाबू अमोलक राम को श्री नगर (कश्मीर) से एक पत्र लिखा:---

" आज्ञाकरी सती सेवक अमोलक राम जी आशीर्वाद पहुंचे पत्र मिले। ईश्वर सद्बुद्धि देवें । तमाम प्रेमियों को आशीर्वाद कहें। ईश्वर नित रख्यक होवें । श्री मान हालात प्रेमियों की सेवा का पाया। पन्द्रह सौ रूपये में कैसे सम्मेलन हो सकता है। और आप प्रेमी कहते हैं कि महाराज जी सम्मेलन की आज्ञा देवें। इसका मतलब यह है कि महाराज जी खर्च भी कहीं से मयस्सर करें। और सम्मेलन की आज्ञा भी देवें, वाह, कलियुगी श्रद्धालुओं और प्रेमियों के श्रद्धा और फर्ज-शनासी को ईश्वर बुद्धि देवें । खैर जैसी आप लोगों की इच्छा उस के मुताबिक उन को खर्च भी मुहय्या करा दिया जायेगा और सम्मेलन की तारीख भी मुकर्रर कर दी जावेगी।

यह याद रखें कि आइन्दा को ऐसी भावना अगर धारण की तो बिल्कुल ही फकीरों के पास से अलहदा हो जायेंगे। यह अच्छी गुरु की अज़मत आप प्रेमी कर रहे हैं कि संगत के अपने खर्च की अदायगी भी श्री गुरू महाराज ही करें यानि कहीं गिरवी भी पड़े, या नौकरी अख्तियार करें या कहीं से गैबी (गड़ा हुआ खज़ाना) दफीना शिष्यों को मयस्सर करें और शिष्य लोग इकट्ठे होकर अपनी खुदी को बुलन्द करें। बल्कि बड़ी से बड़ी कुर्बानी नहीं दे सकते तो फ़कीरों के साथ प्रेम नामुमकिन है, "निश्चय कर लेवें ।"

विचार सम्मेलन:--

प्रभु आज्ञा से सम्मेलन को कार्तिक का दूसरा इतवार जो कि 13 कार्तिक है उस दिन मुकर्रर (निश्चित) करे लें। यानि 29 अक्टूबर को आइन्दा (भविष्य में) कोई भी, अगर यह समय अनुकूल नहीं रहता तो दूसरा इतवार कार्तिक मुकर्रर सम्मेलन समझे।

दरबारे खर्च

डेढ़ हजार के करीब प्रेमियों ने जो सेवा की है उसकी शामिल खर्च कर लेने और आइन्दा को किसी की भी सेवा बगैर इजाजत वसूल नहीं करनी इस जगह के एक नये प्रेमी ने खर्च सम्मेलन के वास्ते तीन हज़ार रूपये की रकम पेश की है जो आज कल में तुमको पहुँच जावेगी। और छः सौ रूपये के करीब प्रेमी गिरधारी लाल व दीनानाथ जी भी अपनी सेवा सम्मेलन अनकरीब ही रवाना कर देवेंगे। यह कुल रकम पांच हजार से कुछ ज्यादा हो जावेगी। इसको संभाल खर्च करना और जितनी भी बचत होवें करें। यह फ़कीरों का तप नाश करके रकम मयस्सर की हुई समझें।

सम्मेलन खाता हिसाब अलैहदा लिखना । जिन्स (अनाज आदि) की फेहरिस्त रवाना की जाती है और बर्तनों की भी फेहरिस्त खाना की जाती है। यह आप खरीद लेवें। ज्यादा जरूरत हुई तो शहर से इमदाद हासिल कर लेवें। इसके अलावा माताओं के रिहायश का इन्तजाम तो तुमने वह विचार जाहिर किए हैं दूसरे खेत की बजाय आश्रम के साथ ही बाहर नलका गुसलखाना बनाया जाए तो अच्छा है। और हिफाजत भी हो सकेगी। गुसलखाने में तो नलका हर जगह महफूज (सुरक्षित) रह सकता है। सिर्फ विचार यह है आश्रम की हदूद आजाद रहनी चाहिए।

किसी किस्म का अन्दर या बाहर गड़बड़ी न होने पावे। इस हालत का विचार कर लेवें। नलका व छोटा गुसलखाना जिसमें सिर्फ पांच फुट के

करीब जगह से दूसरे खेत के कोने में तैयार करवा सवे और माताओं के वास्ते ही तम्बू लगवा देवें। इसके मुतब्लिक राम स्वरूप और गोपीचन्द से भी मशवरा कर लेवें और फिर पता देना कि क्या तजवीज़ इख्तयार की है।

सिर्फ तम्बू और चाँदनी किराये पर लानी होगी। और उस की भी तादाद लिख दी गई है। तकरीबन यह कुल काम इस रकम में अच्छी तरह से सरअंजाम हो जाएगा। प्रभु सहायक होवें।

प्रेमियों के स्नान के बारे में ब्रजपाल का कुआँ ठीक है, दो दिन उसको चलाना । राम स्वरूप को वाजे कर देवें कि अगर साथ कोई और कुआं रहट वाला होवे तो उसको भी इस तारीख के वास्ते अर्ज़ कर देवें। घण्टा-दो- घण्टा पानी की सेवा कर देवे। आगे जो आज्ञा ईश्वर की। आइन्दा अपना मुकम्मल इन्तजाम कर लेना ।

लंगर का इन्तज़ाम ---

विचार तो यह है कि यह एक नई जगह है। इस जगह के रस्मों रिवाज की कुछ पता नहीं। खैर, 13 तारीख को सत्संग के बाद कड़ाह प्रसाद हाजिर संगत को तकसीम कर दिया जावे और बाद में जो भोजन खाना चाहे वह बैठे, वरना सबको जाने की आज्ञा हो जावेगी। खास जगाधरी के प्रेमी मय-परिवारों के और बाहर की संगत उस जगह भोजन करे और कोई गरीब अनाथ होवे वह भी भोजन पावे।

इस विचार के मुताबिक जिन्स का प्रोग्राम लिखा गया है और तुम भी राम स्वरूप से विचार कर लेना। अगर कोई तब्दीली करनी हुई तो पहले विचार करके कर लेनी । शहर में ज्यादा प्रापेगन्डा (प्रचार) सत्संग सम्मेलन का नहीं करना। अगर कोई पूछें तो कह सकते हो कि फलां तारीख को सत्संग होगा। यज्ञ वगैरह का नाम तक न लेना। इस नाम से ब्राह्मण लोग और अड़चन हवन वगैरह की पैदा कर देवेंगे। सिर्फ सत्संग सम्मेलन ही जाहिर करना।

तकरीबन 26 या 27 असूज तक दीनानाथ ही एक प्रेमी और सेवा के वास्ते लेकर जगाधरी पहुँच जावेंगे। मलिक को भी पहले बुलवा लेना। सेवादार तकरीबन चार दिन पहले आवे और बाहरी संगत एक दिन पहले आवे। ईश्वर आज्ञा हुई और शारीरिक अवस्था ठीक हुई तो पहले हफ्ता कार्तिक में जगाधरी पहुँच जायेंगे। इसके अलावा आम ब्राह्मण बिरादरी को इत्तला करने की जरूरत नहीं है सिर्फ प्रेमियों को ही इत्तला दी जावे। फैहरिस्त में मिर्च मसाला व सब्जी-तरकारी जो दर्ज है बनारसी दास से कहे खरीद कर ले। और इन्तजाम के मुताबिक उस जगह पर पहुँचने पर विचार कर लेवे।

हाजिर काम यही है कि जिन्स की खरीद करनी, बरतनों की ख़रीद के साथ गोकल चंद को रखें। उसको वाकफियत होवेगी। नलका व छोटा गुसलखाना तैयार करवाना, तम्बू व चाँदनी चार-पांच दिन पहले लानी होगी । सिर्फ आगे इन्तजाम रखना चाहिए। जो-जो सेवादार तुम्हारी निगाह में होवें उनका पहले हाजिरी के वास्ते लिख देना। और तमाम पत्रिकाएँ इधर से लिख दी जायेंगी। सम्मेलन का सब इन्तजाम (प्रबन्ध) तुम्हारे ज़िम्मे है। जिसको साथ इमदादी रखना हो पहले बुलवा लेना जब सम्मेलन का सब काम अपने हाथ से करेंगे, जिन्स वगैरह का भी पता लग जावेगा। आइन्दा को इधर बोझ डालने की ज़रूरत नहीं रहेगी। प्रभु संगत को समता । अनुयायी भावना देवे।

ह श्री सद्गुरूदेव महाराज

अज श्री नगर

उपरोक्त पत्र बड़ा सार गर्भित है- इसलिए यहाँ दिया जा रहा है। प्रेमी पाठक अहसास करें कि सन 1950 ई0 में आप समता प्रेमियों की मानसिक स्थिति कैसी थी तथा सद्गुरूदेव जी को कितना कष्ट । व श्रम करना पड़ा। सब को एकत्रित करने में।

(कथानक - 40)
"बीती हुई यादें"

तारीख 30.03.1950 मुकाम (स्थान) ताजे वाला प्रेमी स्वर्गीय पंडित बिहारी लाल ऋषि जी को श्री सद्गुरूदेव जी ने कुछ हिदायत लिखाई, जब कि वह सुबह सैर को जा रहे थे। (कलेशर बंगले के बाहर पुलिया पर बैठकर):----

'इनके बाद किसी चीज पर अपनी मिलकियत (स्वामित्त्व) न जतानी । संसार यानि जग के सब प्रणियों को संगत समतावाद जानें। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई या दीक्षा लिए हुए प्रेमियों में तमीज न समझें। लिटरेचर ग्रन्थ, वाणी सब जग के लिए प्रकट हुई जानो ।

जायदाद यानी ज़मीन के इन्तजामात (प्रबन्ध) के वास्ते बड़ी लम्बी स्कीमें (योजनाएँ) बनाना रूहानियत के उसूल के मुवाफिक नहीं है। 'आश्रम' इस गर्ज से कायम हुए हैं और होंगे, कि जिनमें संगत एकत्र होकर ख्यालात की एकता, कोशिश प्रयत्न की एकता यानि आपसी मेल-जोल और अपनी बेहतरी व अपने कल्याण की ख़ातिर सोचे । रिटायर्ड-शुदा प्रेमी सज्जन दुनियावी कामों से फरागत पाकर यानि वक्त निकाल की खातिर रह सकें। सत्पुरूषों के बाद चालाक शिष्य लोग बायसे- बदनामी के कारण बन जाते हैं। कई तरह की गरजें (स्वार्थ) खड़ी कर लेते हैं।

मौजूद वक्त में ब्रह्म-विद्या की खास मांग नहीं हैं। समता की तालीम मुकम्मिल (पूर्ण रूप से) तौर पर तहरीर में आ चुकी है और कुछ लिखने लिखाने की जरूरत नहीं रहीं। जैसा कि ईश्वर आज्ञा हुई है। अब सिर्फ सेवादार भिक्षुओं की जरूरत है-जो सदाचारी, परोपकारी, पूर्ण-त्यागी और समय का बलिदान करने वाले हों और हर तरफ जाकर समता के असूलों का प्रचार करें। अपने उच्च जीवन यानि अमली जिन्दगी से और जीवों पर

असर अन्दाज हों (प्रभाव डालने वाले)। पाँच मुख्य साधनों पर खुद आमिल हों और दूसरों को चलावें।

प्रधानता व बड़ाई उसको ही नसीब होगी जो कि तन-मन-धन पब्लिक सेवा में अर्पण करेगा, निष्काम भाव से दिल में सोते-जागते, उठते-बैठते दूसरों का दर्द समझने वाला हो, और हर छोटे बड़े के वास्ते दिल में प्रेम रख्ता हो, यहाँ तक कि अपने पराये की तमीज़ खत्म हो जावे। नुकता-चीनी या दूसरों की एबजोई (त्रुटि निकालना) करने का किसी को कोई हक नहीं है। क्या तू कोई ठेकेदार दुनियाँ का है। अपनी एबजोई कर। दूसरों को उनकी गलती का अहसास अपने त्याग-भाव और अपने अमली जीवन से कराओ। समता की स्टेज से किसी के खिलाफ कुछ कहना बिल्कुल अच्छा न जानें। और प्रेमी भी खास ख्याल रखें कि ऐसा कोई काम खुद न करें जिससे कि तालीम पर धब्बा आवे।

भिक्षु, संसारी लोगों से बुराईयों को छुड़ावें। उल्टे तरीके की रायज पूजाएँ और ग़लत कथाओं की जगह समता-लिटरेचर पहुँचाएँ। फैशन, सिनेमा, सिगरेट, तमाखू, मांस, मदिरा छुड़ाने लायक चीजें छुड़ाकर सादा खावन-लावन, अख्तियार करवाकर, वह बचत पब्लिक सेवा में खर्च होनी चाहिए। पब्लिक सेवा के प्रोग्राम संगत सोचे, मुस्तहक़ की इमदाद, (सहायता के पात्र) तालीम (शिक्षा) पर खर्च बेकारी हटाने में सहायता, ऐसे-ऐसे शुभ कर्म ही ईश्वर भक्ति व गुरू भक्ति समझें।